श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला-ग्रन्थांक – ३६

जैन तत्त्व निर्णय

द्वितीय भाग

(श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर की जैन सिद्धांत भूषण परीक्षा के द्वितीय खण्ड हेतु निर्धारित)

प्रकाशक

श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला, बीकानेर

(श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज०)

प्रकाशक
श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला
(श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राजस्थान)

●

प्रथम संस्करण–११००

●

जून १९७५

●

मूल्य २.५०

●

मुद्रक—
जैन आर्ट प्रेस
(श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर ने बालकों के धार्मिक, नैतिक संस्कारों को सबल बनाने, युवा एवं प्रौढ वर्ग के भाई-बहिनों में क्रमबद्ध पाठ्यक्रमानुसार धार्मिक, सैद्धान्तिक ग्रन्थों के अध्ययन की अभिरुचि जाग्रत करने एवं उन्हें तत्त्वस्पर्शी ज्ञान कराने के लिये श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना की थी ।

विगत वर्षों में परीक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन करने से समाज के बाल-वृद्ध वर्ग में धार्मिक जिज्ञासा की वृद्धि हुई है और बालकों को नैतिक संस्कार मिले हैं ।

परीक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम को और अधिक सुरुचि-पूर्ण एवं ज्ञान की विविध दिशाओं में सक्षम बनाने तथा [illegible] परीक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों में धार्मिक, नैतिक [illegible] की शिक्षा देने वाले विविध उपयोगी [illegible] की पूर्ति के [illegible] बीकानेर में [illegible] श्री [illegible] जी म. सा., श्री [illegible] जी म. सा. [illegible] श्री [illegible] जी म. सा. और [illegible] जी म. सा. के

सान्निध्य में शिक्षा-शास्त्रियों एवं मर्मज्ञ विद्वानों की विद्वद्-गोष्ठी का आयोजन किया गया था ।

विद्वद्गोष्ठी में लिए गए निर्णय के अनुसार जैन सिद्धान्त भूषण परीक्षा के द्वितीय खण्ड हेतु जैन-तत्त्व निर्णय भाग-२ का प्रकाशन किया गया है । आशा है, प्रस्तुत पुस्तक छात्रोपयोगी होने के साथ ही साधारण पाठकों के लिए भी रुचिकर एवं उपयोगी सिद्ध होगी ।

इस पुस्तक का प्रकाशन श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम की निधि से, जो संघ को साहित्य-प्रकाशन आदि कार्यों के लिये प्राप्त हुई है, किया गया है । इसके लिये हम मण्डल के सभी सदस्यों के आभारी है ।

मन्त्री

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग,

बीकानेर (राजस्थान)
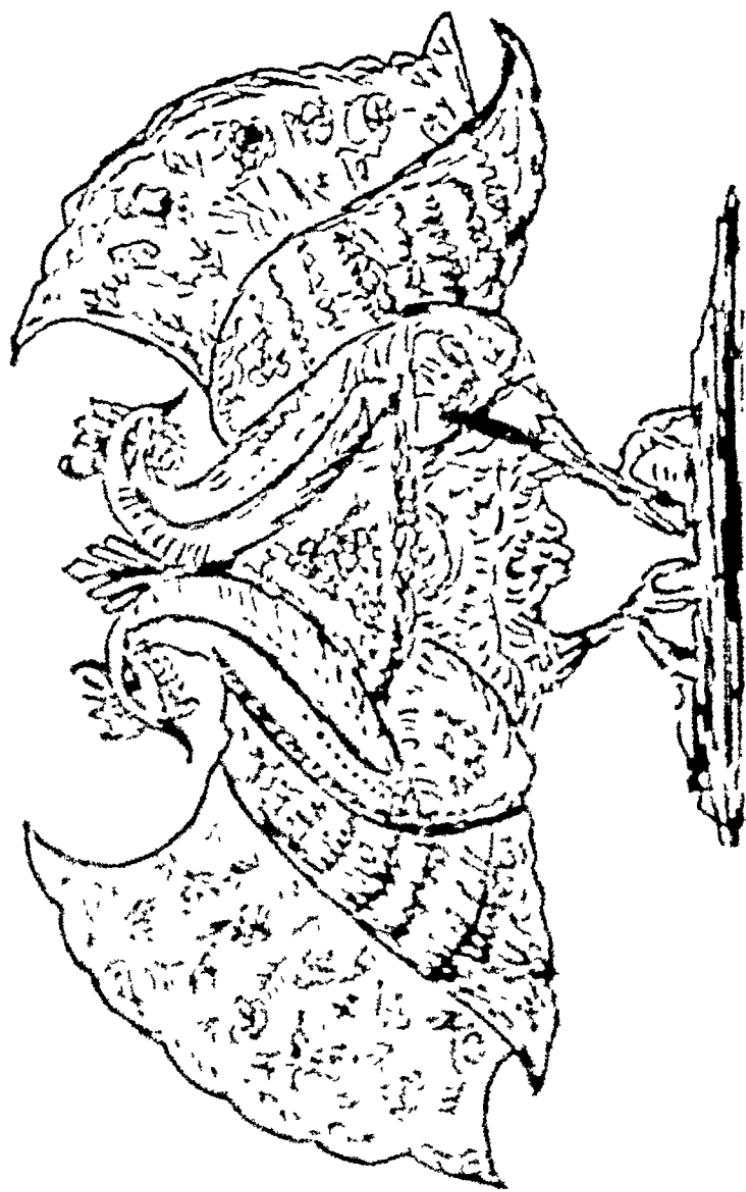
जैन तत्त्व निर्णय

द्वितीय भाग

जैन तत्त्व निर्णय

१. प्र० वास्तविक शान्ति किसे कहते है ?

उ० जिस शान्ति मे अशान्ति का सर्वथा अभाव हो, जो त्रिकाल अबाधित हो, जिसकी उपस्थिति मे सम्पूर्ण आत्मिक शक्तियों का चरम विकास रूप अक्षय भण्डार हो, वह वास्तविक शान्ति है।

२. प्र० वास्तविक शान्ति कैसे प्राप्त होती है ?

उ० वास्तविक शान्ति के सही स्वरूप को समझ, दृढ़ निष्ठा के साथ सम्यक् आचरण करने से वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है।

३. प्र० शान्ति के सच्चे (असली) स्वरूप को कैसे समझा जाय?

उ० शुद्ध देव, शुद्ध गुरु, और शुद्ध धर्म का यथार्थ विज्ञान प्राप्त करने से शान्ति का सच्चा स्वरूप समझ मे आता है।

५. प्र० अरिहन्त किसे कहते हैं ?

उ० जिन्होंने चार घन घाती कर्मों को क्षय कर दिया है, जो १८ दोष रहित, १२ गुण सहित, चौतीस अतिशय और पैंतीस वाणी के गुणों से सुशोभित एवं चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय हैं, उनको अरिहन्त कहते हैं ।

६. प्र० चार घन घाती कर्म कौन से हैं ?

उ० ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय।

७. प्र० उपर्युक्त चार घन घाती कर्मो के क्षय होने से अरिहंत प्रभु के कौन कौन से दोषों की निवृत्ति होती है ?

उ० उपर्युक्त चार घन घाती कर्मो के क्षय होने निम्न दोषों की निवृत्ति होती है—

[१] ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने से अज्ञान की सर्वथा निवृत्ति होती है ।

[२] दर्शनावरणीय कर्म के क्षय होने से निद्रादि की सर्वथा निवृत्ति होती है ।

[३] मोहनीय कर्म के क्षय होने से मिथ्यात्व, अव्रत, राग द्वेष, कामेच्छा और हास्य इन ६ दोषों की निवृत्ति होती है ।

[४] अन्तराय कर्म के क्षय होने से दानांतराय आदि पांच दोषों की निवृत्ति होती है ।

प्र० अरिहन्त भगवान् १८ दोष रहित क्यों कहलाते हैं ?

उ० उपर्युक्त चार घन घाती कर्मो के साथ आत्मा अनादिकाल से रही हुई थी तथा अनेकानेक दोषों से युक्त हो रही थी । उन सब दोषों को १८ भागों में विभक्त

कार दिया गया। अरिहन्त होने पर उन चार घन घाती कर्म जनित १८ दोषों के सर्वथा विनष्ट होने से वे १८ दोष रहित कहलाते है।

प्र० १८ दोष कौन कौन से हैं ?

उ० १८ दोष दो प्रकार से बताये गये है। उनमें पहले अठारह दोष निम्न प्रकार से है १ मिथ्यात्व, २ अज्ञान ३ मद ४ क्रोध ५ माया ६ लोभ ७ रति, ८ अरति ९ निद्रा, १० शोक, ११ अलीक, १२ चौर्य, १३ मात्सर्य १४ भय, १५ हिंसा, १६ राग, १७ क्रीड़ा, १८ हास्य

[अठारह दोष निम्न प्रकार से भी लेते है]
दानान्तरायादि पांच, हास्यादि छ., कामेच्छा, मिथ्यात्व, निद्रा, अज्ञान, अव्रत, राग और द्वेष।

प्र० उपर्युक्त १८ दोषों की निवृत्ति से अरिहंत प्रभु की कौनसी आत्मिक शक्ति अभिव्यक्त होती है ?

उ० [१] मिथ्यात्व रहित- अरिहन्त प्रभु की समझ में जो जो पदार्थ आते हैं वे सत्य हैं अर्थात् जैसे पदार्थ हैं उनका वैसा ही श्रद्धान है, विपरीत नहीं, क्योंकि वे क्षायिक सम्यक्त्व की पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं।

५. प्र० अरिहन्त किसे कहते हैं ?

उ० जिन्होंने चार घन घाती कर्मों को क्षय कर दिया है, जो १८ दोष रहित, १२ गुण सहित, चौंतीस अतिशय और पैंतीस वाणी के गुणों से सुशोभित एवं चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय हैं, उनको अरिहन्त कहते हैं।

६. प्र० चार घन घाती कर्म कौन से हैं ?

उ० ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय।

७. प्र० उपर्युक्त चार घन घाती कर्मों के क्षय होने से अरिहंत प्रभु के कौन कौन से दोषों की निवृत्ति होती है ?

उ० उपर्युक्त चार घन घाती कर्मों के क्षय होने निम्न दोषों की निवृत्ति होती है—

[१] ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने से अज्ञान की सर्वथा निवृत्ति होती है।

[२] दर्शनावरणीय कर्म के क्षय होने से निद्रादि की सर्वथा निवृत्ति होती है।

[३] मोहनीय कर्म के क्षय होने से मिथ्यात्व, अव्रत, राग द्वेष, कामेच्छा और हास्य इन ६ दोषों की निवृत्ति होती है।

[४] अन्तराय कर्म के क्षय होने से दानांतराय आदि पांच दोपों की निवृत्ति होती है।

प्र० अरिहन्त भगवान् १८ दोष रहित क्यों कहलाते हैं ?

उ० उपर्युक्त चार घन घाती कर्मों के साथ आत्मा अनादिकाल से रही हुई थी तथा अनेकानेक दोषों से युक्त हो रही थी। उन सब दोषों को १८ भागों में विभक्त

]

कर दिया गया। अरिहन्त होने पर उन चार घन घाती कर्म जनित १८ दोषों के सर्वथा विनष्ट होने से वे १८ दोष रहित कहलाते है।

प्र० १८ दोष कौन कौन से है ?

उ० १८ दोष दो प्रकार से बताये गये है। उनमें पहले अठारह दोष निम्न प्रकार से है १ मिथ्यात्व, २ अज्ञान ३ मद ४ क्रोध ५ माया ६ लोभ ७ रति, ८ अरति ९ निद्रा, १० शोक, ११ अलीक, १२ चौर्य, १३ मात्सर्य १४ भय, १५ हिसा, १६ राग, १७ क्रीड़ा, १८ हास्य [अठारह दोष निम्न प्रकार से भी लेते है] दानांतरायादि पांच, हास्यादि छ., कामेच्छा, मिथ्यात्व, निद्रा, अज्ञान, अव्रत, राग और द्वेष।

प्र० उपर्युक्त १८ दोषों की निवृत्ति से अरिहंत प्रभु की कौनसी आत्मिक शक्ति अभिव्यक्त होती है ?

उ० [१] मिथ्यात्व रहित–अरिहन्त प्रभु की समझ में जो जो पदार्थ आये है वे सत्य हैं अर्थात् जैसे पदार्थ है उनका वैसा ही श्रद्धान है, विपरीत नहीं, क्योंकि वे क्षायिक समकित की पूर्णता प्राप्त कर चुके है।

[२] अज्ञान रहित—ज्ञान न होना या विपरीत होना अज्ञान है। ज्ञान न होने का कारण ज्ञानावरणीय कर्म है और विपरीत ज्ञान होने का कारण मोह–नीय कर्म है। लेकिन अरिहन्त भगवान् इन कर्मो से रहित होने के कारण केवल ज्ञानी होने से समस्त लोकालोक एवं चर अचर पदार्थो के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं।

[३] मद रहित—अपने गुणों का गर्व होना मद कहलाता है। मद वहीं होता है, जहां अपूर्णता हो। अरिहन्त सब गुणों से—सम्पन्न होने के कारण मद रहित होते हैं। कहा भी है "पूर्णः कुम्भो न करोति शब्दम्" अर्थात् गर्व न करना ही पूर्णता का चिह्न है।

[४] क्रोध रहित-अरिहन्त प्रभु महान् क्षमावान् अर्थात् क्षमा के सागर होते हैं।

[५] माया रहित—अरिहन्त प्रभु सदा सरल स्वभावी निष्कपट होते हैं।

[६] लोभ रहित—मोहजन्य इच्छा या तृष्णा को लोभ कहते हैं। अरिहन्त भगवान् को अतिशय आदि की महान् ऋद्धि प्राप्त होती है। फिर भी वे उसकी इच्छा नहीं करते। वे अनन्त-सन्तोष सागर में ही रमण करते रहते हैं।

[७] रति रहित—इष्ट वस्तु की प्राप्ति से जो प्रसन्नता होती है, वह रति है। अरिहन्त अवेदी अकषायी और वीतराग होने से किंचिद् मात्र भी रति का अनुभव नही करते क्योंकि भगवान् को कोई भी पदार्थ इष्ट नही है।

[८] अरति रहित—अनिष्ट या अमनोज्ञ वस्तु के संयोग से जो अप्रसन्नता (अप्रीति) होती है, वह अरति है। अरिहन्त प्रभु समभावी होने से किसी भी दुःखद वस्तु के संयोग से दुःखित नहीं होते।

[९] निद्रा रहित—दर्शनावरणीय कर्म के उदय से निद्रा आती है लेकिन अरिहन्त प्रभु के उसका सर्वथा

क्षय हो जाने से वे सदा काल जाग्रत ही रहते हैं ।

[१०] शोक रहित—इष्ट वस्तु के वियोग से शोक होता है । अरिहन्त प्रभु के लिए कोई पर-पदार्थ इष्ट या अनिष्ट नहीं है । अतः उन्हें किसी भी प्रकार का इष्ट-अनिष्ट जन्य शोक नही होता । इसलिए वे शोकरहित हैं ।

[११] अलीक रहित—झूठ बोलना अलीक कहलाता है । अरिहन्त प्रभु सदा निष्पृह होने से कभी किंचिद् मात्र भी मिथ्या नही बोलते और न अपना वचन बदलते है । वे सदा शुद्ध सत्य के ही प्रकाशक होते है ।

[१२] चौर्य रहित—स्वामी की आज्ञा के बिना किसी वस्तु को ग्रहण करना चोरी है । प्रभु निरीह होने से स्वामी की आज्ञा के बिना किसी की किसी भी वस्तु को ग्रहण नही करते ।

[१३] मत्सरता रहित—दूसरे में किसी वस्तु या गुण की अधिकता से उत्पन्न ईर्ष्या को मत्सरता कहते हैं । अरिहन्त प्रभु से अधिक गुण धारक कोई देह धारी है ही नही, फिर भी यदि गोशालक के समान कोई ढोंग करके अपनी प्रभुता व प्रतिष्ठा बढ़ाने का प्रयत्न करता है तो भी प्रभु कभी मत्सर भाव धारण नहीं करते ।

[१४] भय रहित—इह लोक भय (मनुष्य का भय) परलोक भय (तिर्यञ्च तथा देव आदि का भय), आदान भय (धनादि का भय) अकस्मात् भय, आजाविका भय, मरण भय, पूजाश्लाघा का भय अरिहन्त

भगवान् अनन्त वलशाली होने से इन सातों भयों से रहित हैं ।

[१५] हिसा रहित—षट् काय के जीवों के प्राणों की घात करना हिसा है । अरिहन्त भगवान् महान् दयालु होने से त्रस स्थावर सभी जीवों की हिसा से सर्वथा निवृत्त होते हैं । साथ ही 'मा हन' अर्थात् किसी भी जीव को मत मारो, इस प्रकार का उपदेश देकर दूसरों से भी हिसा का त्याग कराते है। प्रश्न व्याकरण सूत्र मे उल्लेख है कि "सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए पावयणं भगवयासुकहिय" अर्थात् समस्त जगत् के जीवों की रक्षा रूप दया के लिए ही भगवान ने उपदेश दिया है ।

[१६] राग रहित— तन, जन और धन आदि में स्नेह होना राग है । अरिहन्त में तन, स्वजन धन आदि सम्बन्धी स्नेह नही होता । वे वन्दक और निन्दक दोनों के प्रति सम-भाव रखते हैं । अर्थात् वे अपना सत्कार सम्मान पूजा आदि करने वाले पर प्रसन्न होकर उसका कार्य सिद्ध नहीं करते और निदा करने वाले पर रुष्ट होकर उसे दुःख नहीं देते ।

[१७] क्रीड़ा रहित—क्रीड़ा मोहनीय कर्म जनित होती है । लेकिन प्रभु मोहनीय कर्म से रहित होने के कारण सब प्रकार की क्रीड़ाओं से भी रहित हैं । गाना, वजाना, रास खेलना, रोशनी आदि करना, मण्डप बनाना, भोग लगाना आदि क्रियाओं के द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने वाले लोग भारी मोह-दशा में हैं ।

[१८] हास्य रहित—किसी अपूर्व-अद्भुत वस्तु या क्रिया आदि को देखकर हंसी आना हास्य कहलाता है। अरिहन्त प्रभु सर्वज्ञ होने के कारण उनके लिए कोई भी वस्तु अपूर्व नहीं है, गुप्त नही है। अतः उनको कभी हंसी नहीं आती। इन अठारह दोषों में समस्त दोषों का समावेश हो जाता है। अतः अरिहन्त भगवान् १८ दोषों से रहित अर्थात् समस्त दोषों से रहित सर्वथा निर्दोष हैं।

११ प्र० उपर्युक्त १८ दोषों की निवृत्ति होने से किन किन गुणों की अभिव्यक्ति होती है ?

उ० उपर्युक्त १८ दोषों की निवृत्ति से निम्न बारह गुणों की अभिव्यक्ति होती है। १ अनाश्रवत्व, २ अममत्व, ३ अकिंचनत्व, ४ छिन्न-शोकत्व, ५ निरूपलेपत्व, ६ व्यपगत-प्रेम-राग-दोष मोहत्व, ७ निर्ग्रन्थ प्रवचनोपदेशकत्व, ८ शास्त्र नायकत्व, ९ अनन्त ज्ञान, १० अनन्त दर्शन, ११ अनन्त चारित्र, १२ अनन्त वीर्य।

अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने से अनन्त ज्ञान गुण अभिव्यक्त होता है।

दर्शनावरणीय कर्म के क्षय होने से अनन्त दर्शन गुण अभिव्यक्त होता है।

मोहनीय कर्म के क्षय होने से अनन्त चारित्र अनाश्रवत्व, अममत्व, अकिंचनत्व, छिन्नशोकत्व निरूपलेपत्व, व्यपगत-प्रेम-राग-द्वेष मोहत्व, निर्ग्रन्थ प्रवचनोपदेशकत्व और शास्त्र-नायकत्व गुणों का प्रकटी-

करण होता है एवं अन्तरायकर्म के क्षय होने से अनन्त बल वीर्य सहित सब गुण प्रकट होते है।

१२ प्र० अनन्त बल वीर्य की परिभापा समझाइये ।

उ० उसे समझने के लिए निम्न परिमाण दिये जाते हैं।

१२ योद्धाओं का बल = १ वैल में ।
१० बैलों का बल = १ घोड़े में ।
१२ घोडों का वल = १ भैसे में ।
५०० भैसों का बल = १ हाथी में ।
५०० हाथी का बल = १ केसरी सिह में ।
२००० केसरी सिह का बल = १ अष्टापद पक्षी मे
दस लाख अष्टापद पक्षी का बल = १ बलदेव मे.
उन्नीस लाख ,, ,, =१ प्रति वासुदेव मे
बीस लाख ,, ,, = १ वासुदेव में।
दो वासुदेव का बल = १ चक्रवर्ती में।
करोड़ चक्रवर्ती का बल = १ देव में।
करोड़ देवताओं का बल = १ इन्द्र मे ।

ऐसे अनन्त इन्द्र मिलकर भी अरिहन्त प्रभु की कनिष्ठ अंगुली को भी नही नमा सकते ।

१३ प्र० इन गुणों की उपलब्धि में क्या क्षुधा दोष भी बाधक है?

उ० नहीं, उपरोक्त दोषों की तरह यह दोष ही नहीं है क्योकि यह तो वेदनीय कर्म-जनित परिषह है। और वेदनीय कर्म अरिहन्त में विद्यमान है। मोक्ष मार्ग तत्वार्थ सूत्र में भी कहा है कि "एकादश जिने" अर्थात् जिन भगवान में ११ परिपह पाये जाते है। इन मे क्षुधा भी एक परिपह है।

१४ प्र० अरिहन्त होने पर भी उनको क्षुधा तृषा क्यों लगती है ?

उ० क्षुधा और तृषा शरीर से सम्बन्धित हैं और औदारिक शरीर की वृद्धि मुख्य रूप से अन्न पानी आदि से होती है। उसके बिना शरीर का ह्रास होता है। जैसे कि भगवान् ऋषभ देव को बारह महीने तक आहार पानी नहीं मिलने से उनका शरीर कृश हो गया था। अतः आवश्यकतानुसार क्षुधा तृषा होने पर शरीर के पोषण के लिए अन्नादि का लेना अनिवार्य है।

प्र० १५ क्या अन्नादि लेने से केवल ज्ञान आदि में बाधा उत्पन्न नही होती ?

उ० अन्नादि लेने मात्र से ज्ञान, दर्शन और चारित्र में बाधा नहीं आती हो यदि ऐसा होता तो जो २ अन्नादि लेते है वे कभी भी ज्ञान, दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि नही कर पाते। इसके विपरीत संयम में सहायक शरीर को आवश्यकतानुसार अन्नादि देने से ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि होती है। प्रत्येक भव्यात्मा संयम आराधना मे सहायक औदारिक शरीर को आवश्यकतानुसार अन्नादि देते हुए केवल-ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष मे पहुंची है। यदि अन्नादि लेना केवलज्ञान मे बाधक हो तो केवल ज्ञान तो दूर रहा, सामन्य ज्ञान भी प्राप्त नही हो सकता। अतः यह स्पष्ट है कि संयम आराधन की दृष्टि से अन्नादि ग्रहण करना ज्ञानादि शक्तियों के विकास में न बाधक है और न दोषपूर्ण।

१६ प्र० क्या औदारिक शरीर के विना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती ?

उ० औदारिक शरीर के बिना न कभी किसी को मोक्ष की प्राप्ति हुई है, न होती है और न होगी। यह अटल सत्य है।

१७ प्र० अरिहंतों में क्षुधा तृषा के होने को दोष मानना सत्य है या असत्य ?

उ० अरिहन्तों में क्षुधा तृषा के होने को दोष मानना असत्य है, मिथ्या श्रद्धा है, वीतराग मार्ग से विपरीत है। क्षुधा और तृषा वेदनीय कर्म का मूल है और वेदनीय कर्म अरिहन्तों में विद्यमान है। यह सर्वसम्मत बात है। क्षुधा तृषा के कारण भूत वेदनीय कर्म को तो अरिहन्तों के लिए दोष नहीं मानना और क्षुधा तृषा को दोष मानना, कितनी हास्यास्पद बात है।

१८ प्र० क्या अरिहन्तों में रुजा (रोग) होता है ?

उ० रोग होना कोई जरूरी नहीं, लेकिन हो सकता है।

१९ प्र० क्या अरिहन्तों में रोग होना दोष नहीं है ?

उ० रोग वेदनीय कर्म जन्य है। वेदनीय कर्म अरिहन्तों में विद्यमान है। यह दोष नहीं है। यदि वेदनीय कर्म का अरिहन्तों में होना दोष माना जाय तो रोग भी दोष है और यदि वेदनीय कर्म के रहने पर भी अरिहन्तों मे दोष नहीं है तो रोग होने पर भी अरिहन्तों में दोष नहीं है।

२० प्र० क्या अरिहन्तों में मृत्यु है ?

उ० अरिहन्त-सयोगी केवली १३ वें गुणस्थान वाले कहलाते हैं। १३ वां गुणस्थान अमर है। अर्था

१३ वें गुणस्थान में मृत्यु नहीं है ।

२१ प्र० अरिहन्तों में मृत्यु नहीं है तो वे औदारिक शरीर को कैसे छोड़ते है ?

उ० १३ वें गुणस्थान से १४ वें गुणस्थान पर पहुंचते समय औदारिक शरीर के स्थूल एवं सूक्ष्म योगों का अवरुंधन कर सदा सर्वदा के लिए परित्याग कर देते है।

२२ प्र० १३ वें गुणस्थान पर रहते हुए अरिहन्त क्या कार्य करते है ?

उ० अरिहन्त होने के पश्चात् वे कृतकृत्य हो जाते हैं। इस अवस्था में स्वयं के आत्मविकास के लिए कुछ भी कार्य करना अवशेष नही रहता ।

२३ प्र० १३ वे गुणस्थान की अवस्था में क्या अरिहन्त चुप-चाप बैठे रहते है ?

उ० वे सदा चुपचाप नही बैठते लेकिन आवश्यकता-नुसार विचरण (परिभ्रमण) करते रहते हैं ।

२४ प्र० अरिहन्तों का विचरण कहाँ होता है ?

उ० जनपद के बीच ।

२५ प्र० अरिहन्तों के स्वयं के आत्मविकास के लिए जब कुछ भी कार्य अवशेष नहीं रहता तो फिर वे किस लिए विचरण करते हैं ?

उ० भव्य आत्माओं के कल्याणार्थ ।

२६ प्र० केवल विचरण करने से भव्यात्माओं का कल्याण कैसे होता है ?

उ० विचरण के साथ २ यथावसर आवश्यकतानुसार-
देशना (उपदेश) भी फरमाते हैं ।
प्र० क्या अरिहन्त तीर्थकर होकर भी उपदेश देने की
इच्छा रखते हैं ?
उ० हां, वे जनकल्याण की भावना से अपना कर्त्तव्य
समझकर अपने नियम के अनुसार उपदेश देने की
शुद्ध इच्छा रखते है जो मोह कामादि से रहित
होती है ।
२८ प्र० किसी बात की इच्छा रखना क्या दोष नहीं है ?
उ० इच्छा रखने मात्र से दोष नहीं होता क्योंकि
मोहादि जनित इच्छा दोषयुक्त हो सकती है ।
सभी इच्छाएं दोषयुक्त नहीं होती ।
२९ प्र० इच्छा भी क्या दो प्रकार की होती है ?
उ० इच्छाएं कई प्रकार की हो सकती हैं लेकिन उनके
मुख्यतः दो विभाग कर सकते है ।
३० प्र० इच्छा के मुख्य दो विभाग (भेद) कौन से है ?
उ० एक मोह कामादि जनित इच्छा और दूसरी मोह
कामादि से रहित इच्छा ।
३१ प्र० इच्छा किसका गुण है ?
उ० जैसे ज्ञान, विज्ञान रमण स्वभाव आदि आत्मा के
गुण हैं, वैसे ही इच्छा भी आत्मा का गुण है और
वह दो तरह का है । [१] स्वाभाविक [२]
वैभाविक । जो इच्छा मोह कामादि से रहित है वह
स्वाभाविक है और मोह कामादि से युक्त इच्छा
वैभाविक है ।

३२ प्र० इच्छा की तरह क्या ज्ञानादि के भी मुख्य रूप से दो २ भेद हैं ?

उ० हां दो दो भेद हैं–जैसे शुद्ध ज्ञान और अशुद्ध ज्ञान। मोह कामादि जनित ज्ञान और मोह कामादि रहितज्ञान। वैसे ही मोह कामादि में रमण और मोह कामादि रहित शुद्ध अवस्था मे रमण। स्वभाव परिणति और विभाव परिणति आदि।

३३ प्र० किन्ही का कथन है कि तीर्थंकर उपदेश की इच्छा नही करते, ध्वनि अपने आप ही निकलती है। क्या यह कथन वीतराग मार्ग के अनुसार सत्य है ?

उ० सत्य नहीं, मिथ्या है। जिसने वीतराग प्रभु के मार्ग के अनुसार आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझ लिया है वह ऐसा नहीं कह सकता क्योंकि ध्वनि अपने आप ही उपदेश के लिए नही निकलती।

३४ प्र० ध्वनि क्या है और क्यों नही निकलती ?

उ० जो ध्वनि उपदेशात्मक होती है, वह कण्ठताल्वादि के अभिघातपूर्वक भाषा वर्गणा में परिणत पुद्गल स्वरूप है और चैतन्य शक्ति की क्षमता से ही व्यवस्थित उपदेश के रूप में परिणत होती है। चैतन्य शक्ति के इच्छादि प्रयत्न बिना केवल भाषा वर्गणा के पुद्गल एकान्ततः जड़ स्वरूप हैं। जड़ स्वरूप भाषा वर्गणा के पुद्गल यह नहीं समझते कि हम भाषा वर्गणा के पुद्गल है और अमुक को उपदेश देना है तो अमुक भाषा में परिणत होकर अमुक २ विषय का उपदेश देवे। इस प्रकार का विज्ञान

जडत्व में न होने से उपदेश देने के लिए ध्वनि स्वयमेव नहीं निकल सकती।

३५ प्र० क्या केवल जड़ रूप ध्वनि में स्व पर विज्ञान गुण नहीं है ?

उ० सिर्फ जडरूप ध्वनि में स्व पर विज्ञान नही है। वीतराग सिद्धान्त के अनुसार आत्मा के सम्यक् स्वरूप को समझने वाला सम्यक् दृष्टि जीव यह भली भांति जानता है कि स्व पर विज्ञान आत्मा का गुण है। चैतन्य रहित जड़ में इस गुण का सर्वथा अभाव होता है।

३६ प्र० क्या स्वपर विज्ञान जड़ का गुण है ?

उ० नहीं। एकान्तवादी अज्ञानियों का कथन है कि अरिहन्त बोलने का प्रयत्न नहीं करते, स्वतः आवाज निकलती है। ऐसे लोग प्रकारान्तर से स्वपर विज्ञान को जड़त्व का गुण स्वीकार करते है।

३७ प्र० क्या वे अज्ञानी इतना ही कहते है या कुछ और भी कहते है ?

उ० एक बात का गलत प्रतिपादन करने से अनेक बातें गलत कहनी पड़ती है जैसे अरिहन्तों की चलने बैठने आदि की समस्त क्रियाएं अपने आप होती हैं, अरिहन्तों के प्रयत्नपूर्वक नहीं। इस प्रकार अनेक प्रकार की मिथ्या प्ररूपणा करते हैं।

३८ प्र० क्या चैतन्य आत्मा के प्रयत्न के बिना केवल शरीर उठना, बैठना, चलना आदि क्रियाएं नहीं कर सकता ?

उ० नहीं ! क्योंकि उठना बैठना, चलना आदि क्रियाएं

व्यवस्थित एवं ज्ञानपूर्वक होती हैं। इधर कंटीला मार्ग है, उधर सड़क है, अमुक जगह गड्ढा है तो अमुक मार्ग चढ़ाव है, अमुक जगह मोड़ है। उधर से जाऊंगा तो चक्कर होगा, देरी से पहुंचूंगा। अमुक मार्ग सीधा है उधर से जाऊंगा तो शीघ्र पहुंचूंगा आदि बातों का ज्ञान-विज्ञान चैतन्य आत्मा के अतिरिक्त केवल शरीर को नहीं है। यदि हो तो मृत कलेवर में ये सब क्रियाए होनी चाहिएं। लेकिन मृत कलेवर में ऐसा न कभी हुआ, न होता है और न होगा। यह ध्रुव सत्य है। फिर भी वे दुराग्रह के कारण सत्य का अपलाप करते हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक मिथ्या मत संसार में फैले हुए हैं जो साधारण जनता को भ्रम में डालते है। न तो ध्वनि स्वतः निकलती है और न उठना बैठना चलना फिरना स्वतः होता है। ये सब क्रियाएं चैतन्य के प्रयत्न से होती है।

३९ प्र० सिद्ध किसे कहते है ?

उ० जो सब कर्मो का क्षय करके सिद्धगति में विराजमान हैं और निरंजन निराकार है, उनको सिद्ध कहते है।

४० प्र० निरंजन निराकार का क्या अर्थ है ?

उ० निरंजन अर्थात् कर्म रूपी मैल से रहित और निराकार यानी आकार रहित।

४१ प्र० आकार नही है तो क्या अभाव स्वरूप हैं ?

उ० अभाव स्वरूप नहीं, भाव स्वरूप हैं लेकिन वर्ण गन्ध रस स्पर्श वाले पदार्थ की तरह आकार नहीं होने

से निराकार हैं।

४२ प्र० सिद्ध भगवान् में और कौन कौन से विशिष्ट गुण हैं?

उ० सिद्ध भगवान् में अनन्त गुण हैं लेकिन उन सब गुणों का वर्गीकरण आठ गुणों में कर दिया गया है।

४३ प्र० सिद्ध भगवान् के आठ गुण कौन कौन से हैं ?

उ० १ अनन्तज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त अव्याबाध सुख, ४ क्षायिक सम्यक्त्व एवं क्षायिक चारित्र, ५ अमरत्व, ६ अमूर्तत्व, ७ अगुरु लघुत्व, ८ अनन्त वीर्य।

४४ प्र० इन आठ गुणों में अनन्त गुणों का वर्गीकरण किस अपेक्षा से है ?

उ० आत्मा के अनन्त गुणों को आठ कर्मों ने आच्छादित कर रखा है अतः उन आठ कर्मों के समूल नष्ट हो जाने से आठ कर्मों की अपेक्षा से अनन्त गुणों को आठ गुणों में विभक्त किया है, जैसे कि १. आत्मा की अनन्त, विशेषज्ञान शक्ति को ज्ञानावरणीय कर्म ने आच्छादित कर लिया था, उस कर्म के समूल नष्ट हो जाने से अनन्त ज्ञान स्वरूप पहला गुण प्रगट हुआ

२. आत्मा की सामान्य अनन्त ज्ञान शक्ति को जिस कर्म ने आच्छादित कर रखा था उस कर्म के समूल नष्ट हो जाने से अनन्त सामान्य ज्ञान शक्ति प्रगट हुई उसी को अनन्त दर्शन स्वरूप कहा गया है।

३. आत्मा के अनन्त अव्याबाध सुख में साता और असाता वेदनीय कर्म बाधक बन रहा था। उस वेदनीय कर्म के समूल नष्ट हो जाने से अनन्त अव्याबाध स्वरूप तीसरा गुण विकसित हुआ।

४. आत्मा के क्षायिक सम्यक्त्व एवं क्षायिक चारित्र को दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय नामक कर्म ने आच्छादित कर रखा था । इन दोनों प्रकार के मोहनीय कर्मों के समूल नष्ट हो जाने से अनत क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र स्वरूप चौथा गुण प्रगट हुआ ।

५. आत्मा को अमरत्व गुण से वंचित करने वाले आयुष्य कर्म के समूल नष्ट हो जाने से अमरत्व स्वरूप पाचवां गुण विकसित हुआ ।

६. आत्मा के वर्ण गन्धादि रहित अमूर्तत्व गुण को नाम कर्म ने विभिन्न रूप धारण करा रखे थे, उसके समूल नष्ट हो जाने से अमूर्तत्व (वर्णादि रहित) स्वरूप छठा गुण प्रगट हुआ ।

७. आत्मा के अगुरु लघुत्व गुण को ऊंच नीच का भेद करने वाले गोत्र कर्म ने आच्छादित कर रखा था । उसके समूल नष्ट हो जाने से अगुरु लघुत्व स्वरूप सातवां गुण विकसित हुआ ।

८. आत्मा की अनन्त दानादि वीर्यशक्ति को अंतराय कर्म ने आच्छादित कर रखा था । उसके समूल नष्ट हो जाने से अनत दानादि वीर्यशक्ति स्वरूप आठवां गुण विकसित हुआ ।

४५ प्र० अरिहन्त एवं सिद्ध में क्या अन्तर है ?

उ० अरिहन्त के चार घन घाती कर्म सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और चार अघाती कर्म शेष रहते है । सिद्धों के आठों ही कर्म सर्वथा नष्ट हो जाते है ।

४६ प्र० चार अघाती कर्म कौन से हैं ?

उ० वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नाम कर्म और गोत्र कर्म ये चारों ही अघाती कर्म अरिहन्त में रहते हैं।

४७ प्र० इन चार कर्मों के रहने से क्या ज्ञानादि शक्ति में न्यूनता होती है ?

उ० नहीं ! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व एवं अनन्त चारित्र पर्याय और अनन्त वीर्य शक्ति तो सिद्धों के समान ही अरिहन्तों में होती है ।

४८ प्र० फिर अन्तर किस बात का है ?

उ० अरिहन्तों में वेदनीय कर्म होने से क्षुधा तृषा आदि ११ परिषह, तथा भौतिक पदार्थ आदि के निमित्त से एवं वेदनीय कर्म के उदय से सुख दुःखादि का संवेदन, आयु कर्म के कारण शरीर मर्यादा में अवस्थित रहना, नाम कर्म के कारण शरीर की आकृति में रहना और गोत्र कर्म के कारण ऊंच गोत्र से युक्त होना आदि स्थिति अरिहन्तों में होती है सिद्धों में नहीं ।

४९ प्र० इन कर्मों के कारण अरिहन्त और सिद्ध के गुणों में क्या अन्तर है ?

उ० निरावाधता, अटल अवगाहन, अमूर्तत्व और अगुरु लघुत्व नामक गुण अरिहन्त में प्रगट नही होते हैं, सिद्धों में प्रकट हो जाते हैं । यही अन्तर है ।

५० प्र० अरिहन्त अरिहन्त में भी क्या कोई अन्तर होता है ?

उ० हां, होता है ! कोई कोई अरिहन्त जिनके जिन नाम का उदय होता है, वे केवल ज्ञान पाते ही तीर्थंकर

पद से समन्वित होकर सब जीवों की रक्षा रूप दया के लिए प्रवचन (उपदेश) देते हैं और चार तीर्थों की स्थापना करते हैं। सभी अरिहन्त चार तीर्थ की स्थापना नहीं करते।

५१ प्र० तीर्थ शब्द का क्या अर्थ है?

उ० तीर्यतेऽनेनेति तीर्थः, तीर्यतेऽस्मिन्निति तीर्थः अर्थात् आत्मा जिससे संसार सागर से तैरकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त करे वह तीर्थ कहलाता है? अथवा जिसमें रमण करते हुए संसार समुद्र को पारकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त कर सके वह तीर्थ कहलाता है।

५२ प्र० आत्मा किससे तैरती है?

उ० सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र की आराधना से आत्मा मोक्ष अवस्था को प्राप्त होती है अथवा सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र में रमण करने से या स्वरूप में अवगाहन करने से आत्मा तैरती है। अतः दर्शन ज्ञान चारित्र का स्वरूप सर्वरूप में और देश रूप में जिन आत्माओं में है वे आत्माएं ही तीर्थ संज्ञा पा सकती है। वही सच्चा तीर्थ कहलाता है। उसीसे आत्मा तैरती है।

५३ प्र० ऐसे चार तीर्थ कौन कौन से हैं?

उ० साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविक। ये चारों तीर्थ सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र के यथायोग्य धारक होते है।

५४ प्र० कुछ लोग शत्रुंजय गिरनार आदि को भी तीर्थ कहते है, क्या ये तीर्थ है?

उ० आज तक जितने भी वीतराग तीर्थंकर हुए हैं, ७

[

सभी ने साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चार ही तीर्थ बताये हैं। किसी ने भी पांच तीर्थ नहीं बताये।

५५ प्र० कुछ यह कहते हैं कि भगवान् ने तो चार तीर्थ ही बताये हैं, पांच नहीं। लेकिन शत्रुंजय, गिरनार आदि पर कई आत्माएं सिद्ध हुई हैं, अतः उनको भी तीर्थ मानते हैं। क्या इस प्रकार तीर्थ मानना उपयुक्त है?

उ० वीतराग तीर्थंकर भगवान् ने जिनकी तीर्थ नाम से स्थापना नहीं की, उनको तीर्थ मानना युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि तीर्थंकरों ने पर्वतों को तीर्थकर नहीं कहा। उन्हे मनः कल्पना से तीर्थ कहा जाय तो कोई नदियों को तीर्थ कहने लगेगे, कोई अन्य स्थान को। इस प्रकार तीर्थंकरों के सिद्धान्त को ठेस पहुंचा कर अपने मन से कल्पित बातें करते हुए वे अनन्त तीर्थंकरों की असातना के भागी बन सकते हैं। क्योंकि अढ़ाई द्वीप १५ क्षैत्र में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहां पर सिद्ध नहीं हुए हों। अर्थात् उपर्युक्त स्थानों के प्रत्येक भाग पर एक नहीं, अनेकानेक सिद्ध हुए हैं। हम जहां हैं वहां से भी अनेक सिद्ध हुए हैं। अतः ऐसे तीर्थ में हम सदा बैठे हुए हैं। फिर अमुक स्थान तीर्थ है, यह कहना स्वतः गलत सिद्ध हो जाता है।

५६ प्र० तीर्थंकरों ने गिरनार आदि जड़ तीर्थो की स्थापना की या नहीं?

उ० तीर्थंकरों ने जड़ तीर्थ की स्थापना न कभी की, न कभी करते हैं और न कभी करेंगे।

५७ प्र० तीर्थंकर जड़ तीर्थ की स्थापना क्यों नहीं करते ?

उ० तीर्थंकर केवलज्ञानी होते हैं। वे भूत, भविष्य, वर्तमान आदि सर्व प्रकार के सम्पूर्ण चराचर जगत् के पदार्थो को यथा रूप जानते है और देखते हैं और समग्र भव्य प्राणियों के कल्याण की मुख्यता की स्थिति से उपदेश देते है। अतः वे जड़ तीर्थ की स्थापना नहीं करते क्योंकि आत्माएं जड़ पदार्थो में अपने स्वरूप को भूलकर आसक्त बनी हुई अकल्याण मार्ग पर अनादि काल से जा रही हैं। उन आत्माओं को सन्मार्ग पर लाने के लिए चैतन्य युक्त चार तीर्थो की स्थापना करते है। सिद्ध न उपदेश देते हैं और न चार तीर्थ की स्थापना करते हैं क्योंकि उनके मन, वचन, काया के योग नही रहे। इसलिए वे इस प्रकार के तीर्थ एवं सृष्टि-कर्तृत्व आदि से रहित है।

५८ प्र० शुद्ध देव अरिहन्त को कहते हैं या सिद्ध भगवान को?

उ० अरिहन्त सिद्ध दोनों ही शुद्ध देव हैं।

५९ प्र० सच्चा गुरु किसको कहते हैं ?

उ० गुः शब्दस्तु अन्धकारः रुः शब्दस्तु निरोधकः।
अन्धकारनिरोधत्वात् गुरुः शब्द इत्युच्यते ॥

गुः शब्द का अर्थ अन्धकार है। रुः शब्द का अर्थ निरोधक है। अन्धकार का निरोध करने से गुरु ऐसा कहा जाता है। यह शब्द की व्युत्पत्ति है।

६० प्र० किस से अन्धकार का निरोध करने से गुरु कहलाते है?

उ० जो असंयम रूप अंधकार का निरोध करते हैं और संयम रूप प्रकाश से आलोकित होते हुए अन्य

के असंयम रूप अंधकार को नष्ट करने का भी प्रयास करते हैं, वे गुरु पद को सार्थक करते हैं।

६१ प्र० क्या संयमी पुरुष ही गुरुपद के योग्य हैं, अन्य विद्वान् नहीं ?

उ० वास्तविक गुरुपद की योग्यता तो छठे आदि गुण स्थानवर्ती संयमी पुरुष में ही हो सकती है, अन्य में नही।

६२ प्र० बहुत से प्रौढ दिग्गज विद्वान् होते हैं। वे वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन भी ऐसी लच्छेदार भाषा में करते हैं जैसी संयमी भी नही कर पाते, तो क्या वे गुरुपद के योग्य नही हैं ?

उ० वे भी अक्षर ज्ञान के लौकिक गुरु बन सकते हैं, पर असंयम रूप अंधकार को नष्ट करने वाले नहीं।

६३ प्र० असंयम रूप अंधकार को वे क्यों नहीं नष्ट कर सकते ?

उ० उनमें मोहादि के परित्याग से षष्ठ आदि गुणस्थानवर्ती आचरण की अवस्था नहीं होती। अतः उस अवस्था के विना असंयम रूप अंधकार को नष्ट करने की योग्यता प्रायः नहीं होती।

६४ प्र० ऐसी स्थिति नही होने का क्या कारण है ?

उ० जिस व्यक्ति ने मोहादि विषय का परित्याग नहीं किया है, तथा मनसा वाचा कर्मणा आंतरिक प्रकाश को प्राप्त नहीं किया है, वह व्यक्ति अक्षर ज्ञान का प्रकाश रखते हुए भी असंयम रूप अंधकार से युक्त है। जो स्वयं अंधकार से युक्त है वह दूसरे को

प्रकाश कैसे दे सकता है ? जैसे जो स्वयं अक्षर सम्बन्धी ज्ञान की अनुभूति से रहित है, वह अन्य को अक्षर सम्बन्धी ज्ञान नहीं करा सकता, यह सर्व सम्मत बात है। वैसे ही जिसने स्वयं छठे आदि गुण स्थान सम्बन्धी संयम रूप प्रकाश का अनुभव नहीं किया है, वह स्व और पर के असंयमरूप अंधकार को वस्तुतः कैसे दूर कर सकता है ? अर्थात् दूर नहीं कर सकता।

६५ प्र० जो आत्मा के स्वरूप का, धर्म का, अधर्म का एवं सम्यक् दर्शन आदि का बहुत अच्छा प्रतिपादन करता है, लेकिन आचरण में नहीं लाता तो क्या उसको धर्मगुरु नही समझना चाहिये ?

उ० वह तत्व प्रतिपादन करने वाला एक तरह का कलाकार है, धर्मगुरु नहीं। उसको धर्मगुरु समझना मिथ्या है।

६६ प्र० इस बात को जरा शास्त्रीय दृष्टि से स्पष्ट करिये।

उ० भगवान् महावीर ने तथा अन्य तीर्थंकरों ने छठे आदि गुण स्थान वर्ती पंच महाव्रत धारी आत्मा को ही सर्वस्व का त्यागी साधु कहा है और वह गुरुपद के योग्य है। इससे भिन्न जो सर्वस्व का त्यागी नहीं है और केवल तत्व का प्रतिपादन करने में कुशल है, उसको सर्वस्व का त्यागी गुरु कहना मिथ्या है।

६७ प्र० उसको सर्वस्व का त्यागी नहीं, पर क्या सम्यक्दृष्टि भी नहीं कह सकते ?

उ० उसमें सम्यग्दृष्टि का आचरण यदि हो, तो वह

सम्यग् दृष्टि का लक्षण है।

७१ प्र० सवेग की क्या व्याख्या है ?

उ० सम्यग् प्रकार से मन व आत्मा की प्रवृत्ति संवेग है।

७२ प्र० संवेग के अर्थ को कुछ और स्पष्ट करें।

उ० संसारी आत्मा अनादि काल से मिथ्यात्व दशा में लिप्त हो रही है और आत्मा के स्वरूप से विपरीत दिशा में इसकी प्रत्येक प्रवृत्ति चल रही है। जब सम्यग् दृष्टि की अवस्था आती है तब आत्मा की प्रत्येक प्रवृत्ति में मोड़ आ जाता है अर्थात् आत्मा और मन का चिन्तन वास्तविक लक्ष्य की ओर चलने लगता है। ऐसे चिन्तन आदि को सम्यग् गति (सवेग) कह सकते हैं।

७३ प्र० निर्वेद का क्या स्वरूप है ?

उ० जब आत्मा का लक्ष्य वास्तविक चरम विकास की तरफ मुड़ जाता है, तब सांसारिक नाशवान प्रत्येक पदार्थ के प्रति विरक्त भानवा का पैदा होना और तदनुरूप जीवन व्यवहार होना निर्वेद है।

७४ प्र० अनुकम्पा का स्वरूप बतलाइये।

उ० सम्यग् दृष्टि आत्मा समस्त प्राणी वर्ग की आत्मा को अपनी आत्मा के तुल्य समझता है। किसी भी आत्मा को दुःखी देखना नहीं चाहता। पर्याय की दृष्टि से छोटी तथा बड़ी प्रत्येक आत्मा को एक नय की अपेक्षा से अभेद रूप में मानता हुआ उनके सुख दुःख को अपना सुख दुःख समझता है। इसी का परिणाम–अनुकम्पा है। अर्थात् दुःखी आत्माओं

सम्यक् दृष्टि कहलावेगा, अन्यथा नहीं ।

६८ प्र० सम्यक्दृष्टि का क्या लक्षण है ?

उ० सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था इन पांच बातों का आचरण मुख्यतः सम्यग् दृष्टि का द्योतक है

६९ प्र० सम का अर्थ स्पष्ट करिये ।

उ० वस्तु स्वरूप को यथार्थ रूप से समझना लेकिन उस पर राग द्वेष न करते हुए सम रहना अर्थात् जीव अजीव आदि नव तत्वों को, गुण स्थानों को, और संसार के समस्त पदार्थों को हेय, ज्ञेय उपादेय आदि दृष्टि से भली भांति सम स्थिति में जानना सम है ।

७० प्र० अमुक व्यक्ति में सम है, या नहीं है, इसका ज्ञान अन्य व्यक्ति को कैसे लग सकता है ?

उ० जिस व्यक्ति में वस्तुतः सम की परिणति आ जाती है उस व्यक्ति के सामने चाहे रूखा भोजन आवे, चाहे बढ़िया सरस भोजन, शाक में नमक हो, चाहे नहीं हो, जैसा भी भक्ष्य पदार्थ आता है उसे सुख से ले लेता है । उसमें कुछ भी ननु-नच नही करता ।

इसी तरह मकान-घास की कुटिया हो, साधारण मकान हो, हवेली हो या बढ़िया से बढिया बंगला हो, जैसा भी मिला, उसमें विश्रान्ति की दृष्टि से वह सम भाव पूर्वक रहता है ।

इसी प्रकार—मर्यादित कल्पनीय वस्त्रादि के विपय में समझना चाहिए । समय पर जो चीज उपलब्ध होती है उसमें यथा स्थान सम भाव रखना

सम्यग् दृष्टि का लक्षण है ।

७१ प्र० संवेग की क्या व्याख्या है ?

उ० सम्यग् प्रकार से मन व आत्मा की प्रवृत्ति संवेग है ।

७२ प्र० संवेग के अर्थ को कुछ और स्पष्ट करें ।

उ० संसारी आत्मा अनादि काल से मिथ्यात्व दशा में लिप्त हो रही है और आत्मा के स्वरूप से विपरीत दिशा में इसकी प्रत्येक प्रवृत्ति चल रही है । जब सम्यग् दृष्टि की अवस्था आती है तब आत्मा की प्रत्येक प्रवृत्ति में मोड़ आ जाता है अर्थात् आत्मा और मन का चिन्तन वास्तविक लक्ष्य की ओर चलने लगता है । ऐसे चिन्तन आदि को सम्यग् गति (सवेग) कह सकते है ।

७३ प्र० निर्वेद का क्या स्वरूप है ?

उ० जब आत्मा का लक्ष्य वास्तविक चरम विकास की तरफ मुड जाता है, तब सांसारिक नाशवान प्रत्येक पदार्थ के प्रति विरक्त भानवा का पैदा होना और तदनुरूप जीवन व्यवहार होना निर्वेद है ।

७४ प्र० अनुकम्पा का स्वरूप बतलाइये ।

उ० सम्यग् दृष्टि आत्मा समस्त प्राणी वर्ग की आत्मा को अपनी आत्मा के तुल्य समझता है । किसी भी आत्मा को दुःखी देखना नही चाहता । पर्याय की दृष्टि से छोटी तथा बड़ी प्रत्येक आत्मा को एक नय की अपेक्षा से अभेद रूप में मानता हुआ उनके सुख दु.ख को अपना सुख दुःख समझता है । इसी का परिणाम–अनुकम्पा है । अर्थात् दुःखी आत्माओं

के प्रति आत्मीय भावना के साथ उनके दु:खों को यथा शक्ति, यथा योग्य और यथा अवसर दूर करने के प्रयत्न आदि की श्रद्धा के साथ जो वर्तन है, वह अनुकम्पा है ।

७५ प्र० आस्तिक्य (आस्था) गुण किसे कहते हैं ?

उ० आत्मा परमात्मा आदि की उत्पाद आदि पर्यायों से युक्त आत्मा अनादि काल से मिथ्यात्व आदि दशा में नाना प्रकार की पर्याय को धारण करती आ रही है । उन अवस्थाओं से छूटने के लिए सम्यग् ज्ञानादि पूर्वक यथाशक्ति दुष्प्रकृतियों का परित्याग करने से एवं अहिंसादि सद्वृत्तियों को स्वीकार कर चलने से ही आत्मा परमात्मा तुल्य बन सकती है और इस लोक में छः द्रव्यों का, तथा नव तत्वों का परस्पर सम्बन्ध आदि के यथार्थ रूप से अवस्थान के अस्तितव की श्रद्धा रखना आस्था (आस्तिक्य) है ।

नोट:–इन उपर्युक्त पांचों बातों की वस्तुत: श्रद्धा, तत्व का प्रतिपादन करने वाले में हो तो उसे सम्यग्-दृष्टि कह सकते हैं अन्यथा मिथ्या-दृष्टि समझना चाहिए ।

७६ प्र० इन प्रश्नोत्तरों से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो गई कि जो महाव्रतों से तो रहित है लेकिन वस्तु स्व-रूप का अच्छी तरह प्रतिपादन करता है तो वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करने मात्र से वह गुरुपद के योग्य नहीं हो सकता । परन्तु जो शुद्ध गुरुपद को सुशोभित करने वाले आचार्यश्री होते है, उनमें कितने गुण होते हैं ?

उ० आचार्यश्री के गुणों का पूर्ण रूपेण संकलन करना सरल काम नही है तथापि मुख्य रूप से ३६ गुण बताये गये है।

७७ प्र० आचार्यश्री का स्वरूप क्या है?

उ० साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ के संचालक, छत्तीस गुणों से युक्त, ज्ञानाचारादि पांच आचारों का, अहिंसादि पांच महाव्रतों का पूर्ण रूप से स्वयं पालन करते है और करवाते हैं, वे आचार्य होते हैं।

७८ प्र० आचार्यश्री के ३६ गुण कौन कौन से हैं?

उ० आचार्यश्री के ३६ गुण इस प्रकार है— पाँच महाव्रत पाले, पांच आचार (ज्ञानाचार दर्शनाचार चारित्राचार- तपाचार और वीर्याचार) पालें, पांच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टालें, नववाड़सहित ब्रह्मचर्य पाले, पांच समिति तीन गुप्ति शुद्ध आराधे।

७९ प्र० महाव्रत किसको कहते है? संक्षेप में व्याख्या कीजिये

उ० बडे व्रत अर्थात् हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का मन वचन काया से सर्वथा प्रकार से त्याग करने को महाव्रत कहते है।

८० प्र० पांच महाव्रतों को कुछ और स्पष्ट करें?

उ प्राणातिपात का सर्वथा त्याग—एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सूक्ष्म और बादर, त्रस और स्थावर जीवों के प्राणों की हिंसा मन वचन और काया के योगों द्वारा स्वयं नहीं करना, दूसरों से नहीं कराना और हिंसा करने वाले को अच्छा नहीं

समझना पहला अहिंसा महाव्रत है ।

[२] मृषावाद का सर्वथा त्याग—सदा के लिए क्रोधादि चार कषायों और भय आदि से प्रेरित होकर भी सर्वथा प्रकार से झूठ का प्रयोग मन वचन और काया के योगों द्वारा स्वयं नहीं करना, दूसरों से नहीं कराना और झूठ का प्रयोग करने वाले को अच्छा नहीं समझना क्योंकि मृषावाद (झूठ) रागद्वेष को बढ़ाने वाला, अपयशकारी, वैर विरोध, रति अरति और मानसिक क्लेशों को उत्पन्न करने वाला है । यह अविश्वास का स्थान है । अतः इसका जीवनपर्यन्त सर्वथा त्याग करना दूसरा सत्य महाव्रत है ।

[३] अदत्तादान का सर्वथा त्याग— वस्तु सचित हो या अचित, थोड़ी हो या अधिक, ग्रामादि में हो या वन में, कभी भी, कहीं भी, कैसी भी, वस्तु को मन-वचन, काया के द्वारा बिना आज्ञा स्वयं नही लेना, दूसरों से भी नहीं लिवाना तथा बिना आज्ञा लेते हुए को अच्छा नहीं समझना तीसरा अस्तेय महाव्रत है ।

[४] मैथुन का सर्वथा त्याग - पुरुष, स्त्री और नपुंसक वेद के उदय से संभोग की प्रवृत्ति को मैथुन कहते हैं । देव मनुष्य और पशु सम्बन्धी मैथुन का स्वयं सेवन नहीं करना, दूसरों से नहीं कराना और मैथुन सेवन करने वालों को अच्छा नहीं समझना तथा मन, वचन, काया से जीवनपर्यन्त त्याग का पालन करना चौथा ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

[५] परिग्रह का सर्वथा त्याग—परिग्रह दो प्रकार का होता है— बाह्य और आभ्यन्तर।

घर, खेत, बाग, बगीचे, सोना, चांदी, हीरे, मोती, धन, वाहन, वस्त्र, आभूषण, शय्या, बर्तन आदि द्रव्य तथा, धान्य, घृत, शक्कर, गुड़ आदि खाद्य पदार्थ और गाय, भैंसादि पशु, दास, दासी आदि बाह्य परिग्रह है और किसी भी वस्तु पर ममता (मूर्च्छा) रखना आभ्यन्तर परिग्रह है।

हास्य, रति, अरति, भय, शोक, घृणा, क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्री-पुरुष सम्बन्धी भोगेच्छा, नपुंसक की भोगेच्छा और मिथ्यात्व ग्रहण, ये सब आभ्यन्तर परिग्रह है। वैसे अपनी आत्मा के सिवाय जितनी भी पर-वस्तुएं है उनको ममत्वपूर्वक अपनाना परिग्रह है। इसलिए यदि शरीर पर ममत्व हो तो शरीर भी परिग्रह है। धर्म साधना के लिए निर्ममत्व-बुद्धि से ग्रहण किये जाने वाले रजोहरणादि उपकरण तथा लज्जा और शीतादि निवारणार्थ वस्त्र परिग्रह में नहीं माने जाते क्योंकि ये साधन ममत्व बुद्धि से नही रख कर संयम पालन में सहायक होने से रखे जाते है।

परिग्रह लोभ कषाय के कारण होता है। ज्यों ज्यों लाभ होता है त्यों त्यों लोभ बढ़ता जाता है और विश्व की तमाम सम्पत्ति तथा साम्राज्य प्राप्त करने की तृष्णा जगती है। यह तृष्णा आत्मा के लिए महान् भयानक होकर नरक निगोद के भयंकर दुःखों में फंसा देती है। इस प्रकार के परिग्रह

रूपी पाप का मन, वचन, काया से सेवन करने, कराने और अनुमोदन का सर्वथा त्याग पांचवां अपरिग्रह महाव्रत है ।

८१ प्र० आचार्यश्री के ३६ गुणों में क्षमादि गुण तो नहीं बताये गये । वे इनमें है या नहीं ?

उ० क्षमादि १० गुण (धर्म) उनमें पाये जाते हैं और वे उपर्युक्त ३६ गुणों में ही समाविष्ट हैं ।

८२ प्र० क्षमादि १० धर्म का क्या अर्थ है तथा किसका किसमें समावेश होता है ?

उ० चारित्र धर्म की आराधना करने वाले निर्ग्रन्थ श्रमण महात्मा १० प्रकार के क्षमादि धर्म का पालन करते है, उनका अर्थ तथा समावेश इस प्रकार है—

[१] क्षमा—आत्मा को सहनशील बनाकर क्रोध पर विजय पाना । क्रोधोत्पत्ति के निमित्त उपस्थित हो जाय तो भी शांत होकर सहन करना क्षमा है। इसका समावेश कषाय-त्याग के प्रथम भेद क्रोध के त्याग में होता है ।

[२] मुक्ति—पौद्गलिक वस्तुओं की आसक्ति से मुक्त होना अर्थात् लोभ का त्याग करना मुक्ति है । इसका समावेश कपायत्याग के चतुर्थ भेद लोभ के त्याग में होता है ।

[३] आर्जव—दंभ, ठगाई आदि माया का त्याग करना और सरल बनना, आर्जव कहलाता है । इसका समावेश कपाय-त्याग के तृतीय भेद माया के त्याग में होता है ।

[४] मार्दव—किसी भी प्रकार का अहंकार (घमण्ड) नहीं रखना, ज्ञान तथा तपस्या आदि का भी घमंड नहीं करना मार्दव है। इसका समावेश कषाय-त्याग के द्वितीय भेद मान के त्याग में होता है।

[५] लाघव वस्त्रादि, उपधि और सांसारिक स्नेह रूपी भार से हल्का होना, संग्रह बुद्धि नहीं रखना "लाघव" कहलाता है। इसका समावेश अपरिग्रह महाव्रत में तथा लोभ कषाय के त्याग में होता है।

[६] सत्य—असत्य से दूर रहना और सत्य भी हित, मित और पथ्यकारी बोलना सत्य कहलाता है। इसका समावेश सत्य महाव्रत में होता है।

[७] संयम—मन, वचन, काया से असंयमी प्रवृत्ति से सदा दूर रहना तथा १७ प्रकार के संयम का पालन करना संयम कहलाता है। इसका समावेश अहिंसा महाव्रत में होता है।

[८] तप—इच्छा का निरोध करके १२ प्रकार का तप करना "तप" कहलाता है और इसका समावेश सभी गुणों में होता है।

[९] त्याग—भौतिक वस्तुओं से ममत्व हटाना और अकिञ्चनवृत्ति धारण करना त्याग कहलाता है। इसका समावेश भी अपरिग्रह महाव्रत में होता है।

[१०] ब्रह्मचर्य—विषय वासना का त्याग कर आत्मा को धर्म चितन मे लगाये रखना ब्रह्मचर्य कहलाता है। इसका समावेश स्थूल रूप से ब्रह्मचर्य महाव्रत में होता है।

८३ प्र० क्षमादि १० धर्म ३६ गुणों में समाविष्ट हो जाते है। यह समझ में आ गया लेकिन १२ प्रकार का तप तो इनमें नही आया है। इसे स्पष्ट कीजिये।

उ० ३६ गुणों में तपाचार भी आया है। उस तपाचार मे तप के बारह (१२) भेद स्वतः समाये हुए हैं। अतः अलग गिनाने की आवश्यकता नहीं है।

८४ प्र० तप के वे १२ भेद कौनसे हैं और उनका क्या अर्थ है ?

उ० [१] अनशन—चार प्रकार के अथवा तीन प्रकार के आहार का त्याग करना।

चार प्रकार के आहार की परिभाषा इस प्रकार है—

[क] अशनं—मुख्यतौर पर सामान्य जनता की क्षुधा को शांत करने के जो पदार्थ है, वे सब अशनं में लिये जा सकते हैं जैसे—सभी प्रकार का अनाज, दूध, दही, घी, मीठा आदि। सिर्फ अचित (शुद्ध) पानी के अतिरिक्त जितने भी पेय पदार्थ है, उन सब का समावेश भी इसमें हो जाता है।

[ख] पान—अचित्त शुद्ध पानी २१ प्रकार का धोवन और गर्म पानी। तेले की तपस्या के बाद की तपस्या में केवल गर्म पानी के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का धोवन काम में नही लिया जा सकता। कन्दोई के यहां का कड़ाई आदि का गाढ़ा धोवन किसी भी तपस्या में दिया जाय तो वह अनशन की कोटि मे नहीं आकर उसका समावेश ऊनोदरी

में किया जाना चाहिये ।

[ग] खाइयं (खाद्य)—भोजन करने के पश्चात् विशिष्ट लोग जो मेवादि (सूखे फल) काम में लेते है, उनका समावेश इसमें होता है।

[घ] साइयं (स्वाद्य)—स्वाद की दृष्टि से पान, सुपारी, लौग, इलायची आदि जो पदार्थ काम में लिये जाते है, उनका समावेश इसमें होता है।

[२] ऊनोदरी (अवमौदार्य) भोजन की रुचि से कम भोजन करना।

[३] भिक्षाचर्या—१६ उद्गम दोष (गृहस्थ के द्वारा लगने वाले) १६ उत्पादना दोष (साधु के द्वारा लगने वाले) १० एषरगा दोष (साधु और गृहस्थ दाता दोनों के द्वारा लगने वाले) ५ मण्डल दोष (आहार करते समय सिर्फ साधु के लगने वाले) इन ४७ दोषों से रहित शुद्ध आहारादि मधुकरी वृत्ति से लेना भिक्षाचर्या तप है ।

[४] रस परित्याग— घृत, दूध, दही और मीठा इन विगयादि स्वादिष्ट पदार्थो का आत्मशुद्धि के लिये त्याग करना ।

[५] कायक्लेश— वीरासन, लञ्चन आतपना आदि देह-कष्टकारी क्रियाएं ज्ञानपूर्वक आत्म-शुद्ध्यर्थ करना ।

[६] प्रतिसंलीनता—पांच इन्द्रियों का गोपन करना, चार कषाय का त्याग व मन वचन काया की अशुद्ध प्रवृति को रोकना, स्त्री, पशु, नपुंसक रहित स्थान

में रहना ।

[७] प्रायश्चित्त—जो आलोचना के योग्य हो, उसकी आलोचना करके प्रायश्चित्त लेकर आत्मा को शुद्ध करना ।

[८] विनय—गुरु आदि का भक्तिपूर्वक अभ्युत्थानादि द्वारा सत्कार करना ।

[९] वैयावृत्य—आचार्य, उपाध्याय आदि तद् योग्य पुरुषों की सेवा करना ।

[१०] स्वाध्याय-शास्त्र की वाचना, पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा (चिंतन) और धर्मकथा आदि क्रियाएं स्वाध्याय तप के अन्तर्गत हैं ।

[११] ध्यान—मन को एकाग्र करना ।

[१२] व्युत्सर्ग–काया के व्यापार का त्याग करना ।

८५ प्र० ३६ गुणों के अन्दर सामायिक भी समाविष्ट है या नही ?

उ० सामायिक के अन्दर ही ये सब गुण हैं । इन गुणों से अलग कोई सर्वसामायिक नहीं है । सर्व-विरति सामायिक लेने के बाद उसका जीवनपर्यन्त पालन करना होता है । यह सामायिक फिर जीवन में पारी नहीं जाती अर्थात् सदा जीवन में रहती है । ऐसी सदा के लिए सामायिक लेने वाले को मुनि कहते हैं ।

८६ प्र० मुनि सामायिक को पारते क्यों नहीं ?

उ० सामायिक पारने वाले श्रावक कहलाते हैं, मुनि नहीं । मुनि के यावत् जीवन की सामायिक होती

है अतः वे पार नहीं सकते अर्थात् सामायिक रहित कभी नही होते । गृहस्थ के कम से कम ४८ मिनट के लिए सामायिक होती है। वे जितनी सामायिक लेते हैं उसको नियत समय पर पार कर गृहस्थ के कार्य मे लग जाते हैं ।

८७ प्र० यदि साधु भी सामायिक लेने के बाद फिर गृहस्थ की तरह पार लगे तो क्या हर्ज है ?

उ० यदि साधु भी ऐसा करने लगे तो वे साधु (मुनि) कदापि नहीं कहला सकते । फिर भी ऐसे सामायिक पारने वाले को यदि कोई साधु (मुनि) कहे तो वीतराग भगवान के सिद्धान्तानुसार उसको मिथ्यात्त्व का पाप लगता है ।

८८ प्र० क्या जीवनपर्यन्त की सामायिक के बिना कोई साधु (मुनि) नहीं कहला सकता ?

उ० जीवनपर्यन्त की सामायिक के बिना कोई व्यक्ति साधु (मुनि) नही कहला सकता और मुनि जीवन के बिना ३६ गुणों का धारक व्यक्ति भी तीन काल मे भी आचार्य नहीं बन सकता। यह अनन्तानन्त तीर्थकरों का सिद्धान्त तीन काल में भी अन्यथा नही हो सकता ।

८९ प्र० छः आवश्यक (१ सामायिक, २ चतुर्विंशतिस्तव, अथवा पंच परमेष्ठि स्तुति, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण, ५ प्रत्याख्यान और ६ कायोत्सर्ग) की गिनती ३६ गुणों मे दृष्टिगोचर नहीं होती । क्या ये भी ३६ गुणों मे गर्भित है या नहीं ?

उ० ये छः आवश्यक प्रत्येक साधारण साधक को भी करने होते हैं और यह सामान्य नियम की स्थिति है। इन सामान्य गुणों के रहने पर ही विशिष्ट गुण पनपते हैं, अतः इनको अलग गिनाने की आवश्यकता नहीं है। ये ३६ गुणों के साथ ही अनुप्राणित हैं। ३६ गुण तो आचार्य के प्रमुख रूप से बताये हैं। शास्त्रों में प्रसंगोपात्त अन्य गुणों का भी उल्लेख है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

[१] स्थविर (१ श्रुत स्थविर, २ दीक्षा स्थविर, ३ वय स्थविर) [२] जाति सम्पन्न [३] कुल सम्पन्न [४] बल सम्पन्न [५] रूप सम्पन्न [६] विनय सम्पन्न [७] ज्ञान सम्पन्न [८] दर्शन सम्पन्न [६] चारित्र सम्पन्न [१०] लाघव सम्पन्न [११] ओजस्वी [१२] तेजस्वी [१३] वर्चस्वी [१४] यशस्वी [१५] जित्क्रोधः [१६] जित्मान [१७] जित्माया [१८] जित्लोभ [१६] जितेन्द्रिय [२०] जित्निद्र [२१] जित् परिषह [२२] जीविताशामरण भय विप्रमुक्त [२३] तपप्रधान [२४] गुण प्रधान [२५] चरण करण निग्रह [२६] आजर्व सम्पन्न [२७] मार्दव सम्पन्न [२८] क्षमा सम्पन्न [२६] गुप्ति सम्पन्न [३०] मुक्ति सम्पन्न [३१] विद्या सम्पन्न [३२] सत्य प्रधान [३३] शौच प्रधान [३४] घोर व्रती [३५] घोर तपस्वी [३६] घोर ब्रह्मचर्य वासी।

६० प्र० उपाध्यायजी का स्वरूप बताइये। उनके कितने गुण होते हैं?

उ० उपाध्याय मुनि गुणों से तो युक्त होते ही हैं, साथ ही दृढ सम्यग्दर्शनादि सहित होते है और अन्य को सम्यक्त्व में दृढ बनाते है। सदा श्रुत के अध्ययन अध्यापन मे निरत रहते हैं। शास्त्रानुसार मर्यादित वस्त्रपात्रादि एवं मुख वस्त्रिका से सम्पन्न सौम्य मुद्रा वाले २५ गुणों (११ अंग, १२ उपाङ्ग, करण सत्तरी, चरण सत्तरी) से युक्त अथवा ११ अङ्ग १४ पूर्व से युक्त होते है।

६१ प्र० साधु का स्वरूप बताइये। उसके कितने गुण होते है ?

उ० साधु अविचलित सम्यक्त्व गुणों से ओतप्रोत, मोहादि जनित सांसारिक विषय-वासना रूप कनक-कान्ता के त्यागी, वैरागी बनकर शास्त्रोल्लिखित मर्यादित वस्त्र, पात्र, रजोहरण, मुख वस्त्रिका आदि धार्मिक उपकरण के अति-रिक्त समस्त क्षेत्र वस्तु धन धान्यादि परिग्रह के त्यागी, आत्म-विकास के शुद्ध लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए शुभ भाव पूर्वक शुद्धोपयोग के साथ दैनिक नियमित प्रवृत्ति में रत, यथाशक्ति यथोचित अभिमान के परित्यागपूर्वक अध्यात्मचिन्तन में निमग्न, इष्ट-अनिष्ट संयोग में राग-द्वेष कषायादि दशा से सर्वथा ऊपर उठने के दृढ संकल्पी, हिसादि अशुभ उपयोग परित्यागपूर्वक अहिसादि शुद्धोपयोगपूर्वक वीतराग प्ररूपित साधु लिग को धारण करने वाले २७ गुणों से युक्त होते है।

६२ प्र० साधुजी के २७ गुण कौन से है ?

उ० पांच महाव्रतों का पालन, पांच इन्द्रियों का निग्रह,

चार कपायों का विवेक, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, क्षमा, वेराग्य, मन समाहरण, वचन समाहरण, काय समाहरण, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, वेदना सहन और मृत्युसहन।

६३ प्र० पांच महाव्रतों का पालन कैसे होता है ?

उ० हिसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांचों का मन वचन काया से करने, कराने और अनुमोदन का सर्वथा त्याग करने से महाव्रतों का पालन होता है। इनकी विशद व्याख्या पहले की जा चुकी है।

६४ प्र० इन्द्रिय-निग्रह किसे कहते हैं ?

उ० श्रोतेन्द्रिय (कान), चक्षुरिन्द्रिय (आंख), घ्राणेन्द्रिय (नाक), रसनेन्द्रिय (जिह्वा), और स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) इन पांचों इन्द्रियों के २३ विषय और २४० विकारों पर राग द्वेष नहीं करना, सम भाव रखना अर्थात् अनुकूल पर राग नहीं करना और प्रतिकूल पर द्वेप नहीं करना, यह इन्द्रिय-निग्रह कहलाता है।

६५ प्र० पांचों इन्द्रियों के २३ विषय और २४० विकार कौन से है ?

उ० [१] श्रोत्रेन्द्रिय (कान) का विपय शब्द सुनना है। इसके जीव शब्द (शरीर धारी प्राणी की आवाज) अजीव शब्द (लोहा, पीतल, तांवा, पत्थर, लकड़ी आदि की आवाज) और मिश्र शब्द (मुँह से वाद्य-यंत्र एवं ढोल, घंटी आदि वजने पर निकलने वाली आवाज) ये तीन विपय है। ये तीनों शुभ

और अशुभ के भेद से ६ हुए तथा इन ६ पर राग और द्वेष के भेद से १२ विकार होते हैं।

[२] चक्षुः इन्द्रिय (आंख) के काला, नीला, लाल, पीला और सफेद ये पांचों वर्ण विषय है। ये पांचों विषय सचित अचित और मिश्र (सचिताचित) के भेद से १५ होते है। ये १५ ही शुभ और अशुभ के भेद से ३० होते है। तीसों पर राग और द्वेष करना विकार है। अतः ३० भेदो पर राग और तीसों पर ही द्वेष करना इस तरह कुल ६० विकार है।

[३] घ्राणेन्द्रिय (नासिका) के सूंघने के सुगन्ध और दुर्गन्ध ये दो विषय है। ये भी सचित, अचित, और मिश्र के भेद से ६ हुए और इन ६ को राग द्वेष रूप दो विकार से गुणन करने पर १२ विकार होते है।

[४] रसनेन्द्रिय (जिह्वा) के तीखा, कड़वा, कषा-यला, खट्टा और मीठा ये पांच विषय है। ये पांचों विषय सचित, अचित और मिश्र के भेद से १५ होते है। ये प्रत्येक शुभ और अशुभ के भेद से ३० होते है। इन तीसों पर राग और द्वेष होने से ६० विकार होते है।

[५] स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) के १ कर्कश (कठोर) २ मृदु (कोमल) ३ हल्का ४ भारी, ५ शीतल (ठण्डा) ६ उष्ण (गर्म) ७ स्निग्ध (चिकना) और ८ रुक्ष (रूखा) ये ८ विषय है। ये आठों विषय सचित भी होते है, अचित भी होते है और मिश्र भी होते है। अतः इनके २४ भेद हुए। ये २४ शुभ

भी होते हैं और अशुभ भी। अतः ४८ भेद हुए। इन ४८ पर राग और द्वेष करने से स्पर्शेन्द्रिय के ९६ विकार होते हैं।

इन पांचों इन्द्रियों के विषय-विकारों पर राग द्वेष न करने वाले महात्माओं की जब विषय-वासना नष्ट हो जाती है तो कषायें भी नष्ट होकर वीत-रागता प्रगट होती है।

९६ प्र० कषाय विवेक किस को कहते हैं ?

उ० जिसके द्वारा कष, ससार की आय अर्थात् वृद्धि हो उसे कषाय कहते है अथवा जिसके योग से आत्मा में विभाव दशा उत्पन्न होकर आत्मा की स्वाभाविक स्थिति आच्छादित हो जाय, दब जाय, उसे कषाय कहते है। कषाय आत्मा के लिए महान भयानक शत्रु है। आत्मा (जीव) का संसार मे भटकना और नरक निगोदादिक के भयंकर दुःखों को सहन करना इसी के कारण होता है और इसका मूल कारण मोहनीय कर्म है। इसी मोह-जनित कषाय से आत्मा में मन्द से लेकर तीव्रतम रसवन्ध होता है और दुःखदायक बहुत लबे काल की सांसारिक स्थिति भी इसी के कारण वन्धती है।

इस कपाय के क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार भेद हैं। [१] आत्मा में आवेशमय स्थिति का उत्पन्न होना क्रोध है। इसके कारण आत्मा उचिता-नुचित तथा हिताहित का विवेक भूल जाती है। उग्र क्रोध स्व-पर के नाश का कारण वनता है। [२] आत्मा में अहंकार (घमंड) की उत्पत्ति को

मान कहते है । इस से जाति कुल आदि का तथा ज्ञान का, तपस्या का एवं बड़प्पन का घमण्ड होता है । अपने को सर्वोच्च और दूसरों को तुच्छ बताने की वृत्ति के पीछे मान कषाय रहती है ।

[३] आत्मा में कपट का परिणाम आना माया है । धोखा, ठगी, छल, अपनी हीनता को दबाकर श्रेष्ठता प्रदर्शन करने का दम्भ आदि सब माया है ।

[४] आत्मा में धन, धान्य, वस्त्राभूषण हाटहवेली बाग, बगीचे, शय्या, आसन, गाय, भैंस, स्त्री, पुत्रादि इच्छित भोगादि वस्तु प्राप्त करने की इच्छा (तृष्णा) और इच्छित प्राप्त वस्तु में मूर्च्छा (ममता) करना लोभ है ।

इन चार कषायों के प्रत्येक के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सज्वलन इस तरह चार चार भेद है । इनमें कषाय के प्रथम तीन भेदों को साधु उदय में नही आने देता और अप्रमत्तता का लक्ष्य रख कर संज्वलन कषाय को भी समाप्त करने में उद्यमशील रहता है । यह कपाय विवेक है ।

९७ प्र० भाव सत्य किसको कहते है ?

उ० पांचों इन्द्रियों के विषय विकारों को जीतते हुए आत्मा को शुद्ध रखना, उसमें झूठ, कपट एवं दुर्भावना नही आने देना, निष्ठापूर्वक संयम की आराधना करना, राग द्वेष की परिणति से विमुख होकर विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान में रत रहना तथा अनित्यादि भावना द्वारा धर्म ध्यान मे वृद्धि करते हुए शुक्ल ध्यान की तरफ उन्मुख होने का प्रयत्न करना भाव-सत्य है ।

९८ प्र० करण सत्य किसको कहते हैं ?

उ० सच्ची करणी अर्थात् संयम की आराधना यथार्थ रीति से करना एवं श्रमण समाचारी का भली प्रकार से पालन करना करण-सत्य है।

९९ प्र० समाचारी किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार की है ?

उ० सम्यक् प्रकार के आचरण का नाम समाचारी है और वह दस प्रकार की है। यथा-(१) आवश्यकीय समाचारी उपाश्रय से बाहर जाते समय तीनबार आवस्सिया ३ कहना। (२) नैषधिकी समाचारी कार्य से निवृत्त होकर वापस स्थान पर आते समय तीन बार निस्सिहिया ३ कहना। (३) आचार्य संघाड़ा-पति आदि को पूछ कर कार्य करना। (४) प्रतिपृच्छना समाचारी दूसरों का कार्य करने के लिए आचार्य संघाड़ापति से पूछना। (५) छन्दना समाचारी आहार आदि के लिए अपने संभोगी दूसरे मुनियों को पूछना। (६) इच्छाकार समाचारी-दूसरों की इच्छानुसार कार्य करना। (७) मिच्छाकार समाचारी-दोप लगने पर आत्मनिंदा करना। (८) तथाकार समाचारी- आचार्य व संघाड़ापति आदि गुरुजनों के वचनों को स्वीकार करना।
(९) अभ्युत्थान समाचारी-आचार्यादि की एवं वड़ों की विनय भक्ति करना, वाल, वृद्ध, रोगी साधुओं की आहार आदि से सेवा करने मे तत्पर रहना।
(१०) उपसम्पदा-समाचारी-विशेप ज्ञानादि के लिए दूसरे गच्छ में विशेप ज्ञानी के समीप रहना।

१०० प्र० योग सत्य किसे कहते हैं ?

उ० मन वचन और काया के तीनों योगों की अशुभ प्रवृत्ति को रोक कर शुद्ध संयम साधक प्रवृत्ति में लगाना योग सत्य है ।

१०१ प्र० क्षमा किसको कहते हैं ?

उ० क्रोध के भाव नही आने देना । यदि क्रोध के निमित्त उपस्थित हों और आत्मा में क्रोध और मान का उदय हो तो उसको रोकना क्षमा कहलाता है ।

१०२ प्र० वैराग्य किसको कहते है ?

उ० माया और लोभ कषाय के उदय का निरोध करना, मनोज्ञ रूप रस गंध स्पर्शादि पर लुब्ध न होना । राग भाव का उदय हो जाय तो बलात् उसे जीतना वैराग्य कहलाता है ।

१०३ प्र० कषाय विवेक में क्षमा और वैराग्य का समावेश हो ही जाता है, फिर इनका अलग कथन करना क्या पुनरुक्ति दोष नहीं है ?

उ० नही; क्योकि कषाय विवेक में मुख्यता दोष निवारण की है और क्षमा तथा वैराग्य में मुख्यता गुण धारण की है । आत्महितकारक विषयों का वार २ लाना तथा प्रकारान्तर से उनका वर्णन करना दोष रूप न होकर गुण रूप ही होता है ।

१०४ प्र० मन समाधारण किसको कहते हैं ?

उ० अशुभ संकल्प-विकल्पों को छोड़ कर मन को श्रुत ज्ञान के पठन-पाठन, चिन्तन-मनन और निदिध्यासन में लगाना, शुभ भावना रखना मन समाधारण

कहलाता है ।

१०५ प्र० वचन समाधारण का क्या अर्थ है ?

उ० असत्य और मिश्र वचन की प्रवृत्ति का त्याग करना, आवश्यकतानुसार सत्य और व्यवहार वचनों का हित, मित तथा गुण वृद्धिकारक उच्चारण करना, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और अशुभ योगों का अनुमोदन तथा प्रचार हो ऐसे वचन नहीं बोलना, सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषाय, तथा शुभ योग की वृद्धि हो ऐसे वचनों का उच्चारण करना, उपदेश देना, वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा तथा धर्म से डिगते हुए को स्थिर करने में वचन की प्रवृत्ति करना, वचन समाधारण है । वचन समाधारण का पालक ही स्व-पर का हितकारी है और वही मोक्षमार्ग का आराधक होता है ।

१०६ प्र० काय समाधारण किसको कहते हैं ?

उ० शरीर सम्बन्धी अनुचित सावद्य प्रवृत्ति तथा आलस्य प्रमाद आदि को हटाकर प्रति लेखन, प्रमार्जना, वैयावृत्य, कायोत्सर्ग तथा तप आदि में लगना काय समाधारण है ।

१०७ प्र० ज्ञान सम्पन्नता का क्या अर्थ है ?

उ० साधु में सम्यक् ज्ञान तो होता है किन्तु वह स्वल्प भी हो सकता है, अतः ज्ञान की सतत निरन्तर आराधना करते रहने का नाम ज्ञान सम्पन्नता है। आध्यात्मिकता से शून्य सांसारिक लौकिक साहित्य

का पठन सम्यक् ज्ञान की आराधना नहीं है । वह तो लौकिक कला की आराधना है । उससे आत्म-हित नही होता। सम्यक् श्रुत की वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्म कथा कहना तथा सुनना सम्यक् ज्ञान–सम्पन्नता है ।

१०८ प्र० दर्शन–सम्पन्नता किसको कहते हैं ?

उ० असत्य एवं मिथ्या श्रद्धान से रहित होकर सम्यक् श्रद्धान युक्त होना दर्शन–सम्पन्नता कहलाता है। दर्शन–सम्पन्न परम अर्थ का परिचय और सेवन करता है, दर्शन–भ्रष्ट तथा मिथ्या दर्शन वाले व्यक्ति के परिचय से दूर रहता है और दर्शन के आठ आचारों का पालन करता है ।

१०९ प्र० चारित्र सम्पन्नता का क्या अर्थ है ?

उ० सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात ये पांच चारित्र है । इनमें प्रथम दो चारित्र का इस वक्त पालन हो सकता है । अतः पाच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दस प्रकार की समाचारी, दस प्रकार के यतिधर्म का पालन करना चारित्रसम्पन्नता है ।

११० प्र० वेदना सहन किसको कहते है ?

उ० असाता वेदनीय कर्म के उदय से २२ प्रकार के परिषह और देव, मनुष्य तिर्यचकृत उपसर्ग उत्पन्न होते हैं । साध्य और असाध्य रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। उन सबको समभावपूर्वक सहन करना वेदना सहन कहलाता है ।

१११ प्र० २२ परिषह कौन २ से हैं ? सार्थ वर्णन करें।

उ० [१] क्षुधा-संयम की मर्यादा के अनुसार निर्दोष आहार नहीं मिलने से भूख का कष्ट होना क्षुधा परिषह है।

[२] पिपासा—निर्दोष पानी नही मिलने से प्यास के कष्ट का होना पिपासा परिषह है।

[३] शीत—वस्त्र की कमी के कारण ठंड का कष्ट होना शीत परिषह है।

[४] उष्ण—गर्मी से होने वाला परिषह उष्ण परिषह है।

[५] दंशमशक—डांस, मच्छर, खटमल, जूं आदि के काटने का परिषह दंशमशक परिषह है।

[६] अचेल—अल्प वस्त्र से या वस्त्र न मिलने से कष्ट का होना अचेल परिषह है।

[७] अरति संयम मार्ग की कठिनता से होने वाले खेद को अरति परिषह कहते हैं।

[८] स्त्री—स्त्रियों से होने वाले परिषह का नाम स्त्री परिषह है।

[९] चर्या—विहार करने से होने वाले दुःखों को चर्या परिषह कहते है।

[१०] नैषिधिकि—स्वाध्याय आदि करते समय बैठने से ऊबड़ खाबड़ आदि भूमि में होने वाला कष्ट नैषिधिकि परिषह है।

[११] शय्या—उपाश्रय अथवा बिछौने की अनुकूलता न होने का नाम शय्या परिषह है।

[१२] आक्रोश—किसी की गाली व कटु वचन सुनने से होने वाला दुःख आक्रोश परिषह है ।

[१३] वध—किसी के द्वारा मारने व चोट पहुं-चाने से होने वाले दुःख को वध परिषह कहते हैं ।

[१४] याचना—भिक्षा मांगने से संकोच होने के दुःख को याचना परिषह कहते हैं ।

[१५] अलाभ—आवश्यक वस्तु की प्राप्ति न होने पर होने वाली खिन्नता अलाभ परिषह है ।

[१६] रोग—किसी प्रकार की उत्पन्न व्याधि रोग परिषह है ।

[१७] तृण स्पर्श—घास के बिछाने पर वस्त्र ठीक न होने से तथा नगे पावों में तृण के चुभने से उत्पन्न दुःख तृण स्पर्श परिषह है ।

[१८] जल परिषह—शरीर और वस्त्र के मैल से तथा स्नान नही करने से उत्पन्न दुःख जल परि-षह है ।

[१९] सत्कार पुरस्कार—सत्कार सन्मान और मान पूजा के अभाव से होने वाली खिन्नता सत्कार पुर-स्कार परिषह है ।

[२०] प्रज्ञा—अतिशय बुद्धि प्रभाव से होने वाला गर्व प्रज्ञा परिषह है ।

[२१] अज्ञान—स्वल्पज्ञान होने से किसी के पूछे हुए प्रश्न का उत्तर न दे सकने से उत्पन्न ग्लानि अज्ञान परिषह है ।

[२२] दर्शन—अन्य दर्शनों और विपरीत वादों के सुनने से सम्यग् दर्शन की स्थिरता में वाधा दर्शन परिषह है ।

११२ प्र० मृत्यु सहन किसको कहते है ?

उ० मृत्यु के निकट आने पर अथवा कोई जीवन का अन्त करने के लिए तत्पर हो जाय तो भी विचलित नहीं होकर समभाव से आत्मशुद्धि करके आराधनापूर्वक मृत्यु के दुःख को सहना मृत्यु सहन है ।

११३ प्र० वीतराग प्ररूपित साधु धर्म उपर्युक्त लक्षणों से विश्व में एक विलक्षण एवं वैज्ञानिक धर्म है। ऐसे धर्म के परिपालक साधु का लिंग (चिह्न) क्या है?

उ० मुंह पर २१ अंगुल लम्बे और १६ अंगुल चौड़े कपड़े की आठ पुड़ की मुख वस्त्रिका, शिर खुला, शरीर के ऊपर एक चादर, नीचे के भाग में पहनने के लिए चोल पट्टक, पैरों में किसी प्रकार के जूते चप्पल तथा मोजे आदि नहीं पहनना, एक हाथ में रजोहरण, दूसरे हाथ में एक झोली जिसमे काष्ठ के पात्र होते है, किसी भी प्रकार की सवारी का उपयोग नही, पैदल यात्रा, सफेद मर्यादित वस्त्र, व मर्यादित पात्र आदि चिह्न साधु के होते हैं।

११४ प्र० साधु (मुनि) का ऐसा चिह्न क्यों वताया गया है ?

उ० संसार के सांसारिक कार्य में प्रवृत्त अन्य सभी व्यक्तियों से वीतराग पथ के अनुगामी पूर्ण साधकों की स्थिति पृथक् रहे, इसलिए ऐसा चिह्न वताया गया है ।

११५ प्र० संसारी व्यक्तियों से पूर्ण साधक की स्थिति पृथक् रखने का हेतु क्या है ?

उ० मोहादि विषयों में लिप्त प्राणियों को सत्प्रेरणा मिले और साधकों को भी यह सदा विदित रहे कि हम पूर्ण त्यागी है, किसी भी संसारिक प्रवृत्ति में हमें विलकुल भाग नहीं लेना है, यह इसमें हेतु है ।

११६ प्र० मोहादि में लिप्त प्राणियों को प्रेरणा कैसे मिलती है ?

उ० आरम्भ परिग्रह आदि में लिप्त प्राणी जब साधु पोशाक से युक्त, आरम्भ परिग्रह के पूर्ण त्यागी, वीतराग पथानुगामी पवित्र आत्माओ को देखते हैं तो त्यागमय जीवन के साथ वीतराग भाव की प्रेरणा मिलती है । व्यक्ति पूरा समझे, या नहीं समझे लेकिन कुछ क्षण के लिए वह त्यागमय जीवन की दशा में तल्लीन हो जाता है ।

११७ प्र० क्या ऐसी प्रेरणा अन्य दशा में नहीं मिल सकती?

उ० नहीं ! इस प्रकार की प्रेरणा अन्य किसी दशा में नहीं मिल सकती क्योंकि समान स्थिति में रहने वाले व्यक्ति को अपने से उच्च परिपूर्ण त्यागमय जीवन से ही उच्च प्रेरणा मिल सकती है ।

११८ प्र० क्या चरम शरीरी तीर्थंकर भगवान को देखने से ऐसी प्रेरणा नहीं मिलती ?

उ० मिलती अवश्य है परन्तु ऐसी नहीं । अन्य प्रकार की प्रेरणा मिलती है ।

११९ प्र० ऐसा होने का कारण क्या है ?

उ० चरम शरीर के रूप में तीर्थंकर भगवान के जो

साक्षात् दर्शन होते हैं, वहां साधक के मन में यह भावना रहती है कि इन महापुरुषों ने पूर्वजन्म में बहुत बड़ी पुण्यवानी संचित की, अतः इस जीवन में तीर्थकर बन गये हैं। मैंने ऐसी पुण्यवानी नहीं की, अतः मैं इस जन्म में ऐसा नहीं बन सकता, लेकिन इनके आदेशों का यथाशक्ति पालन करने से आत्मशुद्धि होगी और पुण्यवानी बन्धेगी आदि समझकर भक्ति करता है।

लेकिन जो तीर्थंकर भगवान् की आज्ञाओं को परिपूर्ण रूपेण जीवन में उतारने के लिए सर्व आरम्भ परिग्रह के त्यागी महात्माओं को देखता है तो मन में सहसा यह भावना होती है कि अहो! मेरी ही स्थिति में रहने वाले ये कितने ऊंचे उठ गये है। विषम परिस्थिति में भी ये परिपूर्ण त्यागमय जीवन के साथ वीतराग भाव की आराधना में लगे हुए हैं और मैं संसार की गंदगी में पड़ा हुआ हूँ। मै अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ ही वरवाद कर रहा हूं। क्या मैं ऐसा जीवन नहीं बना सकता? क्यों नहीं बना सकता? ये भी सांसारिक गन्दगी से निकल कर महापुरुष बने हैं तो मै क्यों नहीं बन सकता? अवश्य बन सकता हूं। ऐसी अनेक तरह की प्रेरणा मिलती है। वह एक दृष्टि से भिन्न ही प्रकार की होती है। अतः इस प्रेरणा में तथा अन्य प्रेरणा में जो अन्तर है, वह सहज ही समझा जा सकता है।

१२० प्र० साधु जीवन से रहित केवल साधु पोशाक से भी

क्या इस प्रकार की प्रेरणा मिल सकती है ?

उ० नहीं ! साधु जीवन रहित, केवल वेश की कोई कीमत नहीं है। केवल पोशाक तो बहुरूपिया भी बना सकता है किन्तु उससे तत्काल साधु जीवन का स्मरण होने के साथ ही दर्शक को प्रेरणा मिलनी तो दूर रही बल्कि घृणा पैदा हो सकती है। वह सोच सकता है कि यह नकली साधु जीवन वीतराग संस्कृति को नष्ट करने वाला है, अत: एक प्रकार से धर्म-द्रोही है, ऐसा समझकर विद्वेष के साथ आत्मा को भारी बना सकता है।

१२१ प्र० मोक्ष का व आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग कौन बता सकता है ?

उ० जो मोक्षमार्ग के मौलिक स्वरूप को अर्थात् हेय-ज्ञेय-उपादेय के वास्तविक स्वरूप को समझता हो वही सम्यग् दृष्टि श्रावक अथवा शुद्ध महाव्रतधारी श्रमण वीतरागदेव की आज्ञानुसार मोक्षमार्ग का एवं आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग-दर्शक हो सकता है। वास्तव में शुद्ध साधु सही उपदेष्टा हो सकता है

१२२ प्र० अन्य व्यक्ति सच्चा मार्ग क्यों नहीं बता सकते ?

उ० पंचमहाव्रतों का पालन करने वालों में अनुभव शक्ति का प्राबल्य होता है और उस अनुभव शक्ति के आधार पर जो मार्ग बताया जाता है, वह सही मार्ग होता है। पञ्च महाव्रत के पालन से प्राप्त होने वाले अनुभव के अभाव में स्वार्थ एवं लौकिक रंग में रंगा हुआ व्यक्ति उपदेश भी प्रायः उसी रंग के पुट के साथ देता है। अत: वह सच्चा मार्ग

नहीं बता सकता ।

१२३ प्र० पंच महाव्रतधारी सच्चे मार्गदर्शक मुनियों का वेश अन्य व्यक्तियों से पृथक् होता है । उनके लिए जो चिह्न (लिग) भगवान् ने बताये वे वस्तुतः सर्वज्ञ शक्ति के आधार पर निर्धारित हुए है लेकिन मुखवस्त्रिका आदि साधुवेश का चिन्ह अति व्याप्ति आदि दोषो से रहित कैसे है ? क्या सर्वथा वस्त्र का परित्याग कर नग्न रहना मुनि-लिग नहीं हो सकता ?

उ० यदि मुनि का चिन्ह (लिग) सर्वथा वस्त्र-रहित, जन्मजात शिशु के समान नग्न रहना होता तो जन्मजात के समान नग्न कई बच्चे भी फिरते हैं तथा कई स्थानों पर सर्वथा वस्त्ररहित नग्न बड़े मनुष्य भी रहते है—वे सभी मुनि कहलाने लगेंगे, क्योंकि सर्वथा वस्त्र-रहित नग्न रहना उनमें भी पाया जाता है । अतः मुनि का नग्न रहना अति-व्याप्ति दोष से युक्त होने से दूषित लक्षण है, सही नही क्योकि इससे मुनि की पूरी पहचान नहीं हो सकती ।

१२४ प्र० सर्वथा वस्त्ररहित न रहकर चोल पट्टक बांधें और एक चद्दर शरीर पर रहे, यदि साधु का ऐसा वेश चिन्ह (लिग) होता है तो क्या आपत्ति है?

उ० ऐसा चिन्ह भी साधु को अन्य से पृथक् बनाने वाला नहीं रहता, क्योंकि इस प्रकार की पोशाक तो कई गृहस्थ भी धारण करते है और कई अन्य मतावलम्बी सन्यासी भी रखते है । अतः वे भी मुनि

कहलाने लगेंगे, क्योंकि चद्दर और चोल पट्टक स्वरूप लिग रूप लक्षण उनमें भी पाया जाता है। इसलिए यह भी सही निर्दोष लक्षण नही है।

१२५ प्र० वीतराग तीर्थंकर भगवान् की वास्तविक संस्कृति की परम्परा का द्योतन करने वाले मुनि का चिन्ह (लिग) कौनसा है जो कि ससार के अन्य व्यक्तियों मे नही पाया जाता ?

उ० मुंह पर मुखवस्त्रिका, हाथ में रजोहरण, शरीर पर चद्दर और पहनने को चोल पट्टक आदि पोशाक मुनि का चिन्ह है। इन चिन्हों के साथ पॉच महाव्रतों का पालन करने वाला तथा आचार्यश्री की आज्ञा में चलने वाला जिन भी मुनि होता है। वह वीतराग तीर्थंकर भगवान की वास्तविक संस्कृति का द्योतन करने वाला है।

१२६ प्र० मुंह पर रहनेवाली मुखवस्त्रिका दो तरह की देखने में आती है। एक तो प्रायः समचौरस होती है और दूसरी चौड़ी कम व लम्बी ज्यादा, एक पट्टी सी रहती है। इन दोनों में कौनसी वीतराग मार्ग का सही द्योतन कराने वाली है ?

उ० प्रायः जो समचौरस मुखवस्त्रिका है, वही वास्तविक वीतराग संस्कृति की द्योतक है, लम्बी पट्टी नही

१२७ प्र० लम्बी पट्टी रूप मुखवस्त्रिका वीतराग संस्कृति की द्योतक क्यों नही है ?

उ० प्रथम बात तो यह है कि मुखवस्त्रिका का कपड़ा २१ और १६ अंगुल का लम्बा-चौड़ा शास्त्रकारों

ने बताया है । उसके आठ पुट होने चाहिए । उपर्युक्त कपड़े के आठ पुट करने पर प्रायः समचौरस सा आकार बन जाता है । लम्बी पट्टी का आकार शास्त्रकारों के अभिप्राय के प्रतिकूल है ।

दूसरी बात यह है कि जिस उद्देश्य से मुखवस्त्रिका बांधी जाती है उस उद्देश्य की रक्षा लम्बी पट्टी से पूरी नहीं बन सकती ।

१२८ प्र० मुखवस्त्रिका का उद्देश्य क्या है ?

उ० मुंह से निकलने वाली गर्म हवा से वायुकाय आदि के जीवों की रक्षा करना मुख्य उद्देश्य है । इससे पूर्ण सभ्यता का पालन तथा हर प्रकार की हिंसा का यथासम्भव परित्याग और अहिंसा का परिपालन होता है । जैसे खुले मुंह बोलने से कभी कभी मुंह का थूक सामने बैठने वाले व्यक्ति पर गिर सकता है । थूक गिराना असभ्यता है तथा एक प्रकार से उस व्यक्ति का अपमान है । दूसरे का अपमान करना हिंसा है और मुनि के लिए ऐसी हिंसा का भी परित्याग होना जरूरी है ।

१२९ प्र० लम्बी पट्टी मुख पर बांधने से मुख वस्त्रिका का उद्देश्य पूरा क्यों नहीं होता ?

उ० लम्बी पट्टी बांधने से वह चौड़ी कम होने के कारण उबासी आदि आने से जब मुंह पूरा खुलता है तब गर्म वायु एक साथ बाहर निकलती है जिससे वायु कायके जीवो की और मक्खी, मच्छर आदि की घात हो जाती है । यदि मच्छर आदि जीवों में कोई जहरीला जीव मुंह में प्रवेश कर जाय तो स्वयं के

जीवन तक की भी घात हो सकती है। अतः लम्बी मुंहपत्ती से जीवरक्षा के उद्देश्य की पूरी रक्षा नहीं हो सकती ।

१३० प्र० चलने फिरने आदि से भी वायुकाय के जीवों की हिसा हो सकती है । इस हिसा से बचने का क्या उपाय है ?

उ० चलने फिरने से भी हिसा हो सकती है लेकिन यह अशक्य परिहार है । अर्थात् चलना फिरना बन्द नही हो सकता । लेकिन मुंह पर मुखवस्त्रिका बांधकर हिसा को रोकना शक्य है । खुले मुंह बोलना भगवान ने पापकारी सावद्य भाषा बताया है । अतः खुले मुंह बोलने वाला सावद्य भाषा बोलता है, मुनि जीवन को दूषित करता है और पाप का उपार्जन करता है । परन्तु यतनापूर्वक चलने फिरने वाला मुनि पाप कर्म नहीं बान्धता। वह भगवान की आज्ञा का पालन करता है ।

१३१ प्र० क्या ऐसा कोई शास्त्रीय उल्लेख है ?

उ० हां ! दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में जब प्रश्न पूछा गया कि "कैसे चलें" "कैसे बैठें" जिससे कि पाप कर्म का बन्ध नही हो तो बताया गया है कि यतनापूर्वक चलने आदि की क्रियाएं करते हुए पापकर्म का बन्ध नही होता ।

१३२ प्र० इस विषय में कौन से प्रश्न पूछे गये थे, उन गाथाओं का उल्लेख करिये ।

"कहं चरे कहं चिट्ठे कह मासे कहं सए ।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न वंधइ ।।

शिष्य प्रश्न करता है "हे भगवन् ! मुनि कैसे चले ? कैसे खड़ा रहे ? कैसे बैठे ? कैसे सोवे ? कैसे भोजन करे एवं कैसे बोले, जिससे वह पाप कर्म नही बांधे ?

उ० जयं चरे, जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बधइ ।।

गुरु उत्तर देते है कि मुनि यतनापूर्वक चले, यतनापूर्वक खड़ा रहे, यतनापूर्वक बैठे, यतनापूर्वक सोवे यतनापूर्वक भोजन करे और यतनापूर्वक बोले तो उससे पाप कर्म नही बन्धता है ।

१३३ प्र० नाक से भी तो गर्म वायु बाहर आती है तो क्या उससे वायु-कायिक जीवो की हिसा नही होती ?

उ० नासिका से भी वायु बाहर आती है लेकिन वह अति स्वल्प मात्रा में और एक स्वर से यानी नासिका के एक छिद्र से बाहर आती है तो दूसरा छिद्र प्रायः बन्द रहता है और दूसरे से आती है तब पहला प्रायः बन्द रहता है । दूसरी बात यह है कि नासिका के अन्दर चमड़ी के पुट होते है और केश भी रहते है। स्वल्प वायु चमड़ी और केशों से टकराने से उसकी उष्णता बहुत कम रह जाती है । अतः मुंह की वायु को लेकर नासिका की वायु का प्रश्न उठाना युक्तियुक्त नही है ।

१३४ प्र० भगवान् ने मुंह की वायु की तरह नासिका की वायु के विषय में भी क्या कुछ बताया है ?

उ० नही ! भगवान् ने मुख के विषय को लेकर वायु-

काय के जीवों की रक्षा के लिए मुख वस्त्रिका का विधान किया है और खुले मुंह बोलना सावद्य, (पापकारी) हिंसा का कार्य बताया है। तीर्थंकर भगवान् के आदेशानुसार जो भी पंच महाव्रत धारी मुनि बनेगा, उसको मुख पर मुखवस्त्रिका लगानी ही होगी। जो छोटे जीव की हिंसा भी जानबूझ कर करता है, वह अहिंसक नहीं कहला सकता। जो अहिंसक नहीं हैं, वह पंच महाव्रतधारी नहीं है।

१३५ प्र० क्या तीर्थंकर भगवान का यह आदेश और यह व्यवस्था स्वयं तीर्थंकर द्वारा ही होती है या अन्य किसी व्यक्ति द्वारा भी की जाती है ?

उ० जब तीर्थंकर होते है तब वे चार तीर्थो की स्थापना करते है और शासन की व्यवस्था होती है। तीर्थंकर भगवन्तों की उपस्थिति में गणधर होते है। गणधर शासन की व्यवस्था करते हैं। जैसे सन्त समुदाय को सम्भालना, अध्ययन करवाना, भगवान् के अभिप्रायानुसार उपदेश धारण करना और जनता को सुनाना आदि।

१३६ प्र० क्या भगवान् स्वयं व्यवस्था नही करते हैं ?

उ० भगवान् तो सर्वज्ञ होते है, वे अपने ज्ञान में जैसा देखते हैं वैसा करते हैं। उनको अमुक कार्य अनिवार्य रूप मे करना ही चाहिए, ऐसा नियम नहीं होता। फिर भी तीर्थंकर पद से सम्बन्धित कार्य जो कुछ भी उनको करना होता है वे अवश्य करते हैं और अन्य सब व्यवस्था गणधर सम्भालते है। अन्य मुनिगण आज्ञानुसार तप संयम की आरा

करते हुए शासन सेवा और निष्ठा के साथ आत्मकल्याण के कार्य में निमग्न रहते हैं।

१३७ प्र० कुछ लोग कहते हैं कि महावीर स्वामी के समय में साधु जिनकल्प अवस्था में भी रहते थे। जिन-कल्प किसे कहते हैं ?

उ० वज्रऋषभनाराचसंहनन की स्थिति के साथ जो विशिष्ट प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया जाता है, उसे जिनकल्प कहते हैं।

१३८ प्र० अभिग्रह किसको कहते हैं ?

उ० अन्य किसी व्यक्ति को मालूम नही हो सके, इस प्रकार अपने मन में तप विशेष के लिए जो प्रतिज्ञा ग्रहण की जाती है, उसे अभिग्रह कहते हैं।

१३९ प्र० अभिग्रह सूचक विशिष्ट तप कैसे ग्रहण किया जाता है

उ० किसी मुनि का इस प्रकार की प्रतिज्ञा धारण करना कि अमुक व्यक्ति के अमुक अवस्था में अमुक बात कहने पर ही भोजन ग्रहण करना, अन्यथा इतनी तपस्या करना, सर्प के बिल पर या सिंहादि की गुफा पर अमुक प्रकार की प्रतिज्ञा लेकर ध्यान करना, जंगलों में रहना, बस्ती मे नही रहना, मुख वस्त्रिका रजोहरण एक पात्र रखना तथा कोपीन रखना या नहीं रखना, अपरिचित बस्ती में अचा-नक जाना और कुछ मिल जाय तो लेना अन्यथा तप करना, उपदेश नहीं देना, शिष्य नहीं बनाना पैर में कांटा लग जाय तो नही निकालना, शेर भी सामने आ जाय तो उसके भय से रास्ता न

छोड़ना आदि अनेक प्रकार की भिन्न भिन्न प्रतिज्ञाएं ग्रहण करना अभिग्रहसूचक विशिष्ट तप हैं। इसमें विशिष्ट प्रकार के तप को ग्रहण करने वाले मुनि जिनकल्पी के नाम से पुकारे जाते हैं।

१४० प्र० जिनकल्प अवस्था किस काल में होती है ?

उ० चौथे आरे में जन्मा हुआ बज्रऋषभनाराचसंहनन वाला व्यक्ति जिनकल्पी हो सकता है।

१४१ प्र० वज्रऋषभनाराचनसंहन का तात्पर्य क्या है ?

उ० शरीर की मजबूती एक प्रकार से बज्र के समान कठोर हो, वह वज्रऋषभनाराचसंहनन है। अर्थात् जिस शरीर में रहते हुए मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, ऐसे शरीर की अवस्था में ही जिन। कल्प रूप अभिग्रह धारण किया जा सकता है, अन्य अवस्था में नही।

१४२ प्र० जिनकल्प रूप अभिग्रह धारण किया जाता है तो क्या यह जिनकल्प रूप अवस्था मुनियों के लिए अनिवार्य है ?

उ० यह तो एक प्रकार का अभिग्रह है। यह व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है, अनिवार्य नहीं है।

१४३ प्र० सुना गया है कि भगवान् का शासन २१००० वर्ष तक चलेगा और जिनकल्प की अवस्था तो ज्यादा से ज्यादा जम्बूस्वामी तक ही रही होगी तो फिर जिनकल्प अवस्था के अभाव से भगवान के शासन की जो शासकत्व रूप की अवस्था है,

वह नहीं रह सकती । क्या यह सही है ?

उ० जिनकल्प अवस्था में तो शासकत्व रूप शासन चलने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता, क्योंकि अन्यान्य अभिग्रहों की तरह, जिनकल्प भी एक प्रकार का अभिग्रह है, जो कि चतुर्विध संघ के अन्तर्गत उस अवस्था के कुछ ही साधक मुनियों का ऐच्छिक विषय है।

१४४ प्र० वर्तमान समय में उसका अस्तित्व है या नहीं ?

उ० बिलकुल नही है क्योंकि अभी वज्रऋषभनाराच-सहनन नही है । अतः वैसा अभिग्रह हो ही नहीं सकता ।

१४५ प्र० महिला-वर्ग भी क्या महाव्रत धारण कर सकता है?

उ० हां ! महिलाएं भी पांचों महाव्रत धारण कर सकती है और महाव्रतों की उत्कृष्ट आराधना करके मोक्ष तक प्राप्त कर सकती है ।

१४६ प्र० इस विषय में क्या तीर्थंकर भगवान ने कुछ उपदेश दिया है ?

उ० हां, दिया है । तीर्थंकर भगवान ने चार तीर्थों की स्थापना की है । वे चार तीर्थ साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका के रूप में हैं । इसमें साधु तीर्थ और श्रावक तीर्थ दो पुरुष रूप में तथा साध्वी तीर्थ और श्राविका तीर्थ महिला रूप में हैं । इसका भगवान ने उपदेश ही नहीं दिया, बल्कि स्वयं ने इन चारों को तीर्थ रूप में स्थापित भी किया और उनके लिए मुखवस्त्रिका, रजोहरण, वस्त्र, पात्र आदि की मर्यादा का निर्धारण किया था ।

१४७ प्र० साधु और श्रावक रूप में दो तीर्थो को तीर्थ मानें

और साध्वी और श्राविका रूप दो तीर्थों को तीर्थ न मानें तो क्या दोष लगेगा ?

उ० दोष अवश्य लगेगा और महादोष लगेगा ।

१४८ प्र० क्या दोष लग सकता है और उसका क्या फल होता है ?

उ० इससे विपरीत श्रद्धा तथा तीर्थंकरों की अवहेलना होती है, जिससे गाढ़तम मिथ्यात्व का दोष लग सकता है जिसका फल दीर्घ काल तक संसार में परिभ्रमण करते हुए अनेक तरह के कष्टों को विचित्र तरीके से भोगना पड़ता है और बोध-वीज मिलना कठिन हो सकता है ।

१४६ प्र० अनन्त तीर्थंकरों की अवहेलना, असातना कैसे होती है ?

उ० अनन्त काल से समय समय पर अनन्त तीर्थंकर हुए हैं, होते रहते है और भविष्य में भी होंगे । वे सभी तीर्थंकर पद को सुशोभित कर चार तीर्थ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) की स्थापना करते है । और ये चारों तीर्थ यथास्थान अपने कर्त्तव्य का एवं नियमोपनियमों का पालन करते हुए तीर्थंकरों की आज्ञा व संस्कृति को सुरक्षित रखते हैं । और तीर्थंकरों की आज्ञा व संस्कृति को सुरक्षित रखना उनका विनय करना है । इसके विपरीत चार तीर्थों को स्वीकार नही करना, मन–कल्पित बातें करना, ऐच्छिक वेश धारण करना तथा मन माने तरीके से रहना उन सभी तीर्थंकरों की घोर-तम असातना है ।

१५० प्र० मुनि जीवन के गुणों की सूची में पांच समिति, तीन गुप्ति, छः आवश्यक, सामायिक, वन्दना, २४ तीर्थंकरों व पञ्च परमेष्ठी की स्तुति, प्रतिक्रमण स्वाध्याय कायोत्सर्ग आदि की गिनती क्यों नहीं कराई गई?

उ० पांच समिति (इर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षे-पण, प्रतिष्ठापन) और तीन गुप्ति (मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति) मिलकर आठ प्रवचन माता कह-लाते हैं। यह अष्ट प्रवचन माता भूमिका के रूप में प्रत्येक मुनि में रहती हैं अतः गुणों में अन्त-र्निहित होने से इनकी गिनती पृथक् रूप में करने की आवश्यकता नहीं रहती।

वैसे ही छः आवश्यक भी मुनि लोग दिन रात २४ घण्टों में दो वक्त करते है जो कि धारण किये हुए व्रतों की शुद्धि करने के लिए हैं। अतः ये भी गुणों में गर्भित ही है।

१५१ प्र० केशलुंचन को भी गुणों में क्यों नही लिया गया?

उ० केशलुंचन साल में कम से कम दो बार होता है और इस को काय-क्लेश में गिना जाता है। अतः इसे महाव्रतादि गुणों के साथ नहीं लिया गया।

१५२ प्र० अचेलपन भी क्या गुण है?

उ० अचेलपन गुण की गिनती में नहीं है, यह तो साधु का एक चिन्ह है।

१५३ प्र० अचेल का अर्थ क्या नग्न है?

उ० यदि अचेल का अर्थ नग्न किया जाता तो अचेल

शब्द के प्रयोग की क्या आवश्यकता थी ? नग्न शब्द का ही प्रयोग किया जा सकता था परन्तु नग्न शब्द का प्रयोग न करके अचेल शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ सर्वथा वस्त्ररहित न होकर अल्प वस्त्र किया जाता है। जैसे किसी अल्प संपत्ति वाले को कहा जाता है "यह तो निर्धन है," इसका अर्थ यह नहीं कि वह सर्वथा धन-रहित है बल्कि इसका अर्थ यह किया जाता है कि अति अल्प यत्किंचित् सम्पत्ति वाला है। वैसे ही अचेल का अर्थ है—अल्प वस्त्रवाला।

१५४ प्र० अति अल्प वस्त्र का क्या तात्पर्य है?

उ० शास्त्रकारों ने शास्त्र में मुनि के लिए ७२ हाथ का कपड़ा रखने की जो मर्यादा बताई है, उतने परिमाण से अधिक न रखना सचेलक कहलाता है और उस परिमाण से भी अत्यधिक अल्प परिमाण का और उसमें भी अत्यधिक स्वल्प मूल्य का वस्त्र रखना अत्यधिक स्वल्प वस्त्र वाला तथा यत्किंचित् वस्त्र वाला कहलाता है। उस मुनि को अचेलक शब्द से भी पुकारते हैं।

१५५ प्र० भूमिशयन तथा दांतुन नही करना और अस्नान को किस में गिनना चाहिये ?

उ० अस्नान अर्थात् स्नान नहीं करना और दांतुन नहीं करना, ये दोनो ५२ अनाचार के अन्तर्गत हैं। अतः ये दो ही क्या, अन्य भी अनाचरणों का सुखे-समाधे शक्ति भर वर्जन किया जाता है। रही बात भूमि शयन की, सो जीवों की विशेष उत्पत्ति न हो तो

भूमिशयन करे और जीवों की अधिक उत्पत्ति हो
तो ऐसी हालत में यदि लकड़ी के पट्टे निर्दोष उप-
लब्ध हों तो पट्टे पर शयन करे किन्तु पट्टे स्वयं
लावे । गृहस्थ के लाये हुए पट्टे काम में न ले ।
अगर लेता है तो वह दोषी है । भूमि का व पट्टे
का आग्रह नही है । आग्रह यथाशक्ति जीवों की
रक्षा का है ।

१५६ प्र० क्या मुनि को भोजन खड़े खड़े और एक ही वक्त
करना चाहिये ?

उ० मुनि को खड़े खड़े भोजन नहीं करना चाहिये ।
सुखे-समाधे गृहस्थ के घर पर बैठकर भी भोजन
नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा करना साधुजीवन
की मर्यादा व सभ्यता के विपरीत है । भोजन दिन
में एक या दो बार आवश्यकतानुसार किया जा
सकता है ।

१५७ प्र० आहार (भोजन) एक घर से लेना चाहिये या अनेक
घरों से ? तथा किस विधि से लेना चाहिये ?

उ० चतुर्विध संघ के मुनिवर एक ही घर से समग्र
भोजन नही लेते । वे अनेक घरों से मधुकर वृत्ति-
पूर्वक थोड़ा थोड़ा अपने पात्र में ग्रहण करते हैं
और आचार्य गुरुदेव व सिघाड़े-पति के चरणों
में वह भिक्षा रखकर कहां से, किस किस अवस्था
में, कितनी कितनी मात्रा में भिक्षा ग्रहण की इसका
सारा वृत्तान्त निवेदन करते है । फिर शासनेश आचार्य
श्री व सिघाड़े-पति की आज्ञानुसार गुरु-भ्राता आदि
मुनिवरों मे सम-वितरण कर शास्त्र विहित स्थान पर

आचार्यपद-विवेचनपद

१६० प्र० शास्त्रीय दृष्टि से पंच नमस्कार मंत्र में गुरुपद में मुख्य रूप से किसको ग्रहण करना चाहिए और किस का नाम उच्चारण करना चाहिए तथा देव पद में किसको समझना चाहिए ?

उ० शास्त्रीय दृष्टि से नमस्कार मंत्र में अरिहन्त और सिद्ध ये दो पद देव-श्रेणी में गिने जाते हैं। आचार्यश्री, उपाध्यायश्री और मुनि वर्ग ये तीनों ही गुरुपद के अन्तर्गत आते है। लेकिन उपाध्याय का और साधु वर्ग का समावेश भी अपेक्षा से आचार्य श्री के अन्तर्गत हो जाता है। अतः गुरु-पद से मुख्य रूप से आचार्यश्री का ग्रहण होता है और गौण रूप से उपाध्यायश्री का तथा मुनि वर्ग का भी ग्रहण होता है। लेकिन नाम का उच्चारण तो वर्तमान में जो आचार्य के पद पर हों, उन्हीं का होना चाहिए।

१६१ प्र० उपाध्यायश्री को और साधु वर्ग को भी मुख्य रूप से गुरुपद पर मानने में क्या हानि है?

उ० उपाध्याय तथा मुनिवर्ग को भी पृथक् २ रूप में मुख्य तौर पर गुरुपद पर मानने से अलग २ गुरु के नाम का उच्चारण होगा और ऐसा होने

से शासन का एक रूप नहीं बनता । यही कारण है कि एक २ मुनि के अनेकानेक विभिन्न शिष्य और शिष्याएं होने से अलग २ दल बनते हैं, अलग २ श्रद्धा और प्ररूपणा बनती है । समता-भाव प्रायः नष्ट हो जाता है । अमुक के इतने शिष्य है तो मेरे कम क्यों रहें ? ऐसी भावना से ईर्ष्या का प्रादुर्भाव होता है । प्रतिस्पर्धा पैदा होकर योग्य और अयोग्य की स्थिति को देखे बिना ही शिष्य-संख्या बढ़ाने की धुन लग जाती है, जिससे साधु-जीवन की उत्तम मर्यादा भी लुप्त होने की स्थिति बन जाती है । लगे हुए दोषों के शुद्धि-करण में पक्षपात, दावा-दूवी, राग-द्वेष की प्रबलता, शासन की छिन्न-भिन्नता, अनन्त तीर्थकरों की आज्ञा का लोप, सुधार के नाम पर निर्ग्रन्थ संस्कृति के प्रतिकूल कार्य, अनन्त तीर्थकरों की असातना, अनन्त संसार का परिभ्रमण बढ़ना आदि अनेक हानियों का बीजारोपण होता है । यह महान हानि है ।

१६२ प्र० आचार्यश्री को ही मुख्य रूप से गुरुपद पर मानने से क्या लाभ है ?

उ० आचार्यश्री का पद समस्त चतुर्विध संघ (साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका) के नेतृत्व का पद है तथा अनन्त तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट [illegible] संस्कृति की सुरक्षा के साथ [illegible] अनुशासन का केन्द्र है । आचार्यश्री का पद [illegible] का नहीं, बल्कि चतुर्विध संघ का [illegible] पद है, समस्त समाज का [illegible]

का पद है। तीर्थंकरों व अरिहंतों की अनुपस्थिति में अरिहंत व सिद्ध पद की प्राप्ति के मार्ग-निर्देश का प्रतिनिधित्व भी इसी पद में रहा हुआ है। तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट गणधरों द्वारा ग्रंथित शास्त्रों के आन्तरिक रहस्य के प्रतिपादन का अधिकार भी इस पद के अधिकारी का कार्य है। समस्त शिष्य–शिष्याएं इसी पद के आधीन होते हैं, अतः गुरुपद के रूप में मुख्य रूप से इसी पद का उच्चारण होने से एकत्व की भावना बलवती होती है। सभी में समता–भावना विकसित होती है। विषमता का अन्त आता है। पक्षपात और दलबंदो समाप्त होती है। ईर्ष्या और शिष्य–स्पर्धा भी नहीं होती। ये आपके शिष्य है और ये मेरे शिष्य है, इस प्रकार की वृत्ति नही रहती, जिससे शासन स्थिति अखण्ड एवं प्रभावशाली वनती है। साथ ही विभिन्नता सम्बन्धी राग-–द्वेष के बीज मन्द पड़ने से आत्मशुद्धि के साथ आत्मविकास अति ही सरल होता है। अनन्त तीर्थंकरों की आज्ञा तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट निर्ग्रन्थ श्रमण–संस्कृति की सुरक्षा का कार्य केन्द्रीयकरण के रूप में रहने से तीर्थंकरों की एक प्रकार की सेवा, भक्ति, विनय आदि अनेक कार्य सम्पन्न होते हैं। ऐसे अनेक तरह के लाभ हैं।

१६३ प्र० चतुर्विध संघ के अन्तर्गत आचार्यश्री जी की आज्ञा में चलने वाला श्रमण समकित दे सकता है या नहीं ?

उ० दे सकता है लेकिन मुख्य गुरुपद के रूप में आचार्यश्री का ही नाम बतावे, पृथक् २ मुनियों के नहीं, ताकि शासन-व्यवस्था में छिन्न-भिन्नता न आ सके ।

१६४ प्र० जिन संतों में आचार्यश्री का पद न हो तो फिर क्या किया जाय ?

उ० आचार्यश्री के नेतृत्व बिना नहीं रहना चाहिए क्योकि शासन की स्थिति आचार्य के अधीन रहती है।

१६५ प्र० जब आचार्यश्री का स्वर्गवास हो जाय तो फिर क्या किया जाय ?

उ० आचार्यश्री के स्वर्गवास होते ही या उसके पहले आचार्यश्री के पद पर योग्य व्यक्ति को प्रतिष्ठित कर देना चाहिए ।

१६६ प्र० योग्य व्यक्ति का चयन कौन कर सकता है ?

उ० प्रथम तो जो आचार्यपद पर प्रतिष्ठित है, उन्हीं के द्वारा दीर्घ अनुभव के आधार पर जिस को भी योग्य समझा जावे, उसको आचार्यश्री के पद पर नियुक्त कर देना उपयुक्त रहता है। यदि अचानक कोई घटना घटित हो जाय और नियुक्ति नही हो पाई हो तो चतुर्विध संघ के अनुभवी महानुभावों द्वारा योग्य मुनि की तत्काल इस पद पर नियुक्ति हो जाना आवश्यक है ।

१६७ प्र० किसी स्थविर के आधार पर क्या संघ नहीं चल सकता ?

उ० किसी स्थविर में यदि आचार्यश्री के पद वहन की योग्यता हो तो उसको इस पद पर नियुक्त कर

देना चाहिए। यदि वैसी स्थिति न हो तो साठ२ सत्तर २ वर्ष के स्थविर रहने पर भी उनको आचार्यश्री के पद पर नियुक्त न करके एक दिन का दीक्षित साधु भी योग्य समझा जाय तो वह आचार्यश्री के पदपर नियुक्त किया जा सकता है। फिर वह उन स्थविरों से शास्त्राध्ययन कर सकता है। यदि आचार्यश्री के पद पर किसी की नियुक्ति के बिना केवल स्थविरों से काम चल सकता होता तो एक दिन के दीक्षित को तत्काल आचार्यश्री के पद पर नियुक्त करने के विधान की आवश्यकता नहीं रहती।

१६८ प्र० यदि किसी पांचवें पद पर रहने वाले साधु ने समकित सम्बन्धी पाठ कराते समय मुख्य गुरुपद के नाम के रूप में अपना नाम बता दिया तो क्या उसे कोई दोष लगेगा ?

उ० वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाय तो दोष लगता है। कारण यह है कि पांचवें पद पर रहने वाले मुनियों में मुख्य गुरुपद की स्थिति नहीं रहती। मुख्य गुरुपद की स्थिति तो आचार्यश्री के पद में रहती है। वह नमस्कार मंत्र में तीसरा पद है अतः पांचवें पद पर रहने वाले मुनि का नाम मुख्य गुरुपद के रूप में बता दिया जाता है तो एक प्रकार से असत्य दोष लगता है।

१६९ प्र० मुख्य और गौण कुछ भी नहीं कह कर पंच पदस्थ को ही गुरु कह देने से क्या कोई हानि है ?

उ० मुख्य और गौण कुछ भी नहीं कह कर पंच पदस्थ

को ही गुरु कह देना योग्य नहीं है क्योंकि स्पष्ट रूप से तीसरे पद स्थित गुरु का नाम-निर्देश कर देना चाहिए। यदि कोई ऐसा नहीं करता है तो वह शासन का आराधक नहीं होता।

१७० प्र० क्या आचार्यश्री की आज्ञा के बिना विचरण करने वाला शासन का आराधक नही रहता ?

उ० यह तो उपर्युक्त प्रश्नोत्तर से स्पष्ट हो जाता है। जब चतुर्विध संघ है तो संघपति तो होना ही चाहिए। संघपति के बिना संघ शासन की आराधना कैसे होगी ? व्यवहार में भी सभापति के बिना सभा के सदस्यों की कार्यवाही वैधानिक नहीं मानी जाती तो फिर धार्मिक विधान में शासनपति आचार्य के बिना शासन की आराधना कैसे मानी जा सकती है ? चतुर्विध संघ के केन्द्र अनुशासक आचार्यश्री के आज्ञानुसार ही मोक्ष मार्ग की आराधना होनी चाहिये तथा उन्हीं के शिष्य-शिष्याएं कहलाना आत्मकल्याण की सही दिशा है।

१७१ प्र० जैसे आचार्यश्री के पद पर रहने वाले महानुभाव की नितांत आवश्यकता है, वैसे ही क्या उपाध्याय पद पर भी किसी महानुभाव की नितांत आवश्यकता है ?

उ० आचार्यश्री के पदपर रहने वाले महानुभाव की नितांत आवश्यकता की तरह उपाध्याय पद पर किसी महानुभाव की नितांत आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उपाध्याय के पद सम्बन्धी कार्य आचार्यश्री

के पद पर स्थित महानुभाव संभाल सकते हैं। अतः आचार्यश्री के पद पर रहने वाले महानुभाव में दोनों पदों का समावेश हो जाता है। जिस समय शिष्यों को अध्ययन कराने की आवश्यकता आचार्यश्री अनुभव करें, उसी समय उस पद के योग्य मुनि को इस पद से विभूषित कर सकते है।

१७२ प्र० धर्म क्या चीज है ?

उ० तीर्थंकर सर्वज्ञोपदिष्ट जो अहिंसा, संयम और तप है, वह धर्म है।

१७३ अहिसा किसे कहते हैं ?

उ० प्राणी के प्राण का वध नहीं करना निषेध रूप अहिसा कहलाती है और प्राण का रक्षण करना विधि रूप अहिसा कहलाती है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में अहिंसा के ६० नाम बताये गये हैं।

१७४ प्र० इस अहिसादि रूप धर्म को कैसे समझा जा सकता है?

उ० इसका आद्योपान्त सही स्वरूप तभी समझा जा सकता है जब कि सम्यग्ज्ञानपूर्वक सच्ची श्रद्धा के साथ जीवन व्यवहार में यथासम्भव आचरण का रूप आए।

१७५ प्र० इसके लिए धर्म का ही ज्ञान करना आवश्यक है या आत्मा का भी ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है ?

उ० धर्म व आत्मा दोनों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

१७६ प्र० धर्म और आत्मा का ज्ञान करने के लिए क्या अन्य पदार्थों का ज्ञान भी आवश्यक है ?

उ० धर्म व आत्मा का ज्ञान करने के लिए अन्य पदार्थों का भी ज्ञान करना आवश्यक है।

१७७ प्र० कुछ व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि अन्य सभी पदार्थों का ज्ञान बेकार है, सिर्फ आत्मा का ज्ञान ही करना चाहिए। यह बात कहां तक सही है ?

उ० इस प्रकार की बात तो अज्ञान दशा में रहने वाला कह सकता है। सम्यग् ज्ञानी तो इस प्रकार की बात नही कह सकता।

१७८ प्र० आखिर साधना तो आत्मा की ही करनी है, फिर सब पदार्थो का ज्ञान किस काम में आएगा ?

उ० कोई भी व्यक्ति आत्मा सम्बन्धी या आत्म-साधना सम्बन्धी धर्म का सही ज्ञान तभी कर पाएगा जबकि आत्मा से सम्बन्धित विश्व के प्रमुख मौलिक पदार्थो का शक्ति भर सही ज्ञान उसे होगा।

१७९ प्र० ऐसा क्यों होता है ?

उ० अनेक तरह के पत्थर एवं कांच के टुकड़ों की राशि मे चिन्तामणि रत्न भी मिला हुआ है। उनमे से चिन्तामणि रत्न ही लेना है। पत्थर आदि अन्य कुछ भी नही लेना है। ऐसी हालत में साधारण पत्थर और कांच तथा चिन्तामणि रत्न का भेद जानने वाला ही उस ढेर से चिन्तामणि रत्न को प्राप्त कर सकेगा। जैसे केवल चिन्तामणि रत्न को पाने के लिए भी अन्य आवश्यक पदार्थो का ज्ञान आवश्यक है, वैसे ही सिर्फ आत्मा की अथवा सच्चे धर्म की पहचान व प्राप्ति के लिए भी विश्व में विद्यमान अन्य आवश्यक प्रमुख तत्वो का यथासम्भव ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

१८० प्र० विश्व किसको कहते है ?

उ० लोक अलोक आदि सम्पूर्ण अवस्थान को विश्व कहते हैं। इससे पृथक् किंचित् मात्र भी कोई अवस्थान नहीं है।

१८१ प्र० लोक किसको कहते हैं?

उ० आकाश के एक विशिष्ट भाग को लोक कहते हैं।

१८२ प्र० आकाश के विशिष्ट भाग की कौनसी विशेषता है, जिससे उसको लोक के नाम से पुकारा जाता है?

उ० द्रव्यसमूह के परस्पर सापेक्ष अवस्थान की विशेषता के कारण लोक कहलाता है।

१८३ प्र० द्रव्य किसे कहते हैं?

उ० तादात्म्य सम्बन्ध से गुण पर्याय के समूह का अवस्थान जिसमें हो, वह द्रव्य कहलाता है।

१८४ प्र० द्रव्य के उत्तर में द्रव्य-समूह शब्द का प्रयोग हुआ है, अतः द्रव्य कितने है?

उ० मुख्य छः द्रव्य हैं।

१८५ प्र० छः द्रव्य के पृथक् २ नाम क्या हैं?

उ० धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल।

१८६ प्र० मुख्य द्रव्य छः हैं तो गौण द्रव्य कितने हैं?

उ० गौण द्रव्य अनेकानेक हैं, जिनकी गिनती सम्भव नही है।

१८७ प्र० गौण द्रव्य कहने का क्या तात्पर्य है? वे सत्य हैं या असत्य?

उ० गौण द्रव्य कहने का तात्पर्य यह है कि वे द्रव्य संयोगी

है और असंयोगी भी। संयोगी द्रव्य के रूप में सत्य है, असत्य नही।

१८८ प्र० संयोगी द्रव्य किसे कहते है?

उ० जो दो अणुओं से लेकर अनन्तानन्त अणुओं का स्कन्ध है, उसे संयोगी द्रव्य कहते है।

१८९ प्र० कई कहते हैं कि सयोगी द्रव्य मात्र भ्रम है, वास्तविक नही है, यह कहां तक सही है?

उ० यह कथन ठीक नहीं है। संयोगी द्रव्य भी अपेक्षा से सत्य एवं वास्तविक है।

१९० प्र० क्या संयोगी द्रव्य नष्ट होता है?

उ० सर्वथा नष्ट नहीं होता। व्यक्ति रूप से अवस्थातर होता है और स्कन्ध रूप से नष्ट भी होता है। वह भी भूत, भविष्य और वर्तमान में रहता है तथा उसी स्थिति के अनुसार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप तीनों अवस्थाएं पाई जाती हैं।

१९१ प्र० अस्तिकाय किसको कहते हैं?

उ० काल्पनिक दृष्टि से अविभाज्य अंशों के समूह के अस्तित्व को अस्तिकाय कहते है।

१९२ प्र० इस प्रकार के अस्तिकाय के कितने भेद हैं?

उ० पांच भेद होते है यथा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य, पुद्गलद्रव्य और जीव द्रव्य।

१९३ प्र० एक के दो हिस्से न हो सके, उसे यदि परमाणु कहा जाय तो उसमें अस्तिकाय का लक्षण कैसे घटित हो सकेगा?

उ० एक परमाणु के दो विभाग तो नहीं हो सकते परन्तु

[

एक ही परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पाये जाते हैं। अतः एक दृष्टि से विचार किया जाय तो वह भी बौद्धिक दृष्टि के अविभाज्य अंशों के समूह का अस्तित्व कहा जा सकता है। इस-लिए उपर्युक्त अस्तिकाय का लक्षण (अर्थ) घटित हो जाता है।

१६४ प्र० धर्म द्रव्य किसको कहते हैं ?

उ० जीव और पुद्गल की गति रूप अवस्था में जो सहायक द्रव्य है, उसको धर्म द्रव्य कहते है।

१६५ प्र० अधर्म द्रव्य किसको कहते है ?

उ० जीव और पुद्गल द्रव्यों की स्थिति रूप अवस्था में जो सहायक द्रव्य है, वह अधर्म द्रव्य कहलाता है।

१६६ प्र० आकाश द्रव्य किसको कहते हैं ?

उ० धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों के अवस्थान के लिए अवकाश देने की जिसमें योग्यता है, वह आकाश द्रव्य कहलाता है।

१६७ प्र० पुद्गल द्रव्य किसको कहते हैं ?

उ० वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श तादात्म्य सम्बन्ध से जिसमें रहते हों तथा स्कन्ध रूप की अवस्था प्राप्त करने आदि की स्थिति में जो सड़न गलन आदि स्वभाव की योग्यता रखते हों अर्थात् जैसे बादल मिलते है और बिखरते हैं वैसी ही योग्यता उप-र्युक्त वर्ण आदि के साथ जिसमें पाई जाय, वह पुद्गल द्रव्य कहलाता है।

१६८ प्र० जीव द्रव्य किसको कहते है ?

उ० स्वपर विज्ञान, स्वभाव, उपयोग, शक्ति, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, चैतन्य आदि अनेक गुण तादात्म्य संबंध से जिसमें विद्यमान हों, वह जीव द्रव्य कहलाता है।

१९९ प्र० गुण किसको कहते हैं ?

उ० द्रव्य की सर्व अवस्था में सर्वदा सम्पूर्ण रूप से जो व्याप्त होकर रहता है और द्रव्य के अतिरिक्त जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, वह गुण कहलाता है ।

२०० प्र० गुण कितने हैं ?

उ० गुण अनेक हैं लेकिन संक्षेप में उनका वर्गीकरण करे तो दो भेद है—सामान्य और विशेष।

२०१ प्र० सामान्य गुण किसको कहते है ?

उ० जो गुण अनेकों मे पाया जाय, वह सामान्य है ।

२०२ प्र० सामान्य गुण के कितने भेद है ?

उ० सामान्य गुण भी अनेक प्रकार के हैं लेकिन कुछ गिनाये जा रहे है। जैसे–अस्तित्व, पदार्थत्व, वस्तुत्व द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरु–लघुत्व, सामान्यत्व, विशेष-त्व, सख्यात्व, परस्पर सापेक्षत्व आदि ।

२०३ प्र० अस्तित्व गुण किसको कहते है ?

उ० जिस शक्ति के कारण किसी न किसी रूप में जिसकी सदा विद्यमानता रहती है, वह अस्तित्व गुण कहलाता है ।

२०४ प्र० पदार्थत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति विशेष के द्वारा पदार्थ के यथार्थ स्व-रूप का द्योतन होता है, वह पदार्थत्व गुण कह-लाता है ।

२०५ प्र० वस्तुत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति के निमित्त से अर्थ क्रिया हो, उसको वस्तुत्व गुण कहते हैं। जैसे घट की अर्थक्रिया जल धारण करना है और पट की अर्थक्रिया आच्छादन करना आदि है।

२०६ प्र० द्रव्यत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति के कारण द्रव्य की कूटस्थता (एक सरीखी ठोसता) न रहकर पर्याय की दृष्टि से अवस्थाएं परिवर्तित होती रहें, उसे द्रव्यत्व गुण कहते है।

२०७ प्र० प्रमेयत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जो किसी न किसी ज्ञान का विषय बनता हो, उसको प्रमेयत्व गुण कहते है।

२०८ प्र० अगुरु-लघुत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति के कारण एक पदार्थ की ध्रौव्य अवस्था दूसरे की ध्रौव्य अवस्था में परिणत न हो तथा ध्रौव्य अवस्था के वास्तविक मूल द्रव्य अपनी अवस्था से सर्वथा पृथक् होकर बिखरें नही, एवं नष्ट नहीं होते हुए वास्तविक स्थिति में जो गुरु भी न हो और लघु भी न हो, उसे अगुरु लघुत्व गुण कहते है।

२०९ प्र० सामान्य विशेषत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति के कारण पदार्थ में सामान्य और विशेप गुणों की प्रतीति हो, वह सामान्य-विशेषत्व गुण कहलाता है।

२१० प्र० सख्यात्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति के कारण एक आदि संख्या का व्यवहार हो, वह संख्यात्व गुण कहलाता है।

२११ प्र० परस्पर सापेक्षत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० एक ही पदार्थ में परस्पर विरुद्ध दीखने वाले स्वभाव व धर्मों का समन्वय जिस शक्ति के माध्यम से हो एवं धर्मास्ति, अधर्मास्ति आदि सभी द्रव्यों का संयुक्त रहना, कभी भी एक दूसरे को छोड़कर सर्वथा निर्पेक्ष न रहना, यथायोग्य परस्पर निमित्त सापेक्ष बनना आदि व्यवस्था जिस शक्ति के माध्यम से बनती है, वह परस्पर सापेक्षत्व गुण कहलाता है।

२१२ प्र० प्रदेशत्व गुण किसको कहते है ?

उ० रूपी हो या अरूपी, जिसका किसी न किसी रूप में जिस शक्ति के माध्यम से आकार अवश्य रहता हो, वह प्रदेशत्व गुण कहलाता है।

२१३ प्र० जीव के विशेष गुण क्या क्या है ? और कितने है ?

उ० जीव द्रव्य के ज्ञान, दर्शन, चारित्र क्रियात्व, कर्तृत्व भोक्तृत्व, जीवत्व आदि अनेकानेक विशेष गुण हैं, जिनकी गिनती करना सम्भव नहीं है।

२१४ प्र० ज्ञान गुण किसको कहते है ?

उ० जिस शक्ति के माध्यम से स्वपर के स्वरूप को जाना जाय, वह ज्ञान गुण कहलाता है।

२१५ प्र० ज्ञान गुण के कितने भेद हैं ?

उ० ज्ञान गुण के अनेक भेद हैं लेकिन उन सब भेदों को संक्षेप मे दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है।

२१६ प्र० वे दो भाग कौन से हैं ?

उ० सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान ।

२१७ प्र० सम्यग्ज्ञान किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति से शुद्ध देव, शुद्ध गुरु और शुद्ध धर्म का तथा वस्तु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो, वह सम्यग् ज्ञान कहलाता है ।

२१८ प्र० मिथ्याज्ञान किसको कहते हैं ?

उ० कुदेव, कुगुरु और कुधर्म का तथा वस्तु-स्वरूप का विपरीतज्ञान जिस शक्ति के माध्यम से हो, वह मिथ्या ज्ञान कहलाता है ।

२१९ प्र० दर्शन गुण किसको कहते हैं ?

उ० देव, गुरु, धर्म तथा पदार्थों पर श्रद्धा रखना दर्शन गुण कहलाता है ।

२२० प्र० दर्शन गुण के कितने भेद हैं ?

उ० दर्शन के भी संक्षेप में दो भेद किये जा सकते हैं ।

२२१ प्र० वे दो भेद कौनसे हैं ?

उ० सम्यग् दर्शन और मिथ्या दर्शन ।

२२२ प्र० सम्यग् दर्शन किसको कहते हैं ?

उ० सम्यग् ज्ञानपूर्वक शुद्ध देव, शुद्ध गुरु, शुद्ध धर्म पर तथा वीतराग प्ररूपित नवतत्व आदि पदार्थों पर शुद्ध श्रद्धा जिस शक्ति के कारण हो, वह सम्यग् दर्शन कहलाता है ।

२२३ प्र० मिथ्या दर्शन किसको कहते हैं ?

उ० कुदेव, कुगुरु और कुधर्म तथा राग द्वेप युक्त व्यक्तियों द्वारा वताये गये अपूर्ण तत्वों पर पूर्ण रूप वे विश्वास जिस शक्ति के माध्यम से हो, वह मिथ्या दर्शन

गुण कहलाता है ।

२२४ प्र० मिथ्या दर्शन को गुण क्यों कहा गया ?

उ० मिथ्याज्ञान की तरह इसमें भी क्षयोपशम होता है । क्षयोपशम भाव भी एक प्रकार से गुण माना गया है । गुण सामान्य शब्द है । गुण होने पर ही उसके पीछे सम्यग् और मिथ्या विशेषण लगते है? इसलिए यह गुण शब्द से पुकारा गया है ।

२२५ प्र० चारित्र गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति के माध्यम से जीव आचरणयुक्त बनता है, वह चारित्र गुण कहलाता है ।

२२६ प्र० इसके कितने भेद है ?

उ० इसको भी मुख्य रूप से दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं ।

२२७ प्र० वे कौनसे हैं ?

उ० सम्यग् चारित्र और असम्यग् चारित्र ।

२२८ प्र० सम्यग् चारित्र किसको कहते हैं ?

उ० सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग् दर्शन पूर्वक जो चारित्र है, वह सम्यग् चारित्र है। जैसे वीतराग भगवान द्वारा उपदिप्ट पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति आदि इसके कई तरह के आभ्यन्तर भेद हैं ।

२२९ प्र० असम्यग् चारित्र किसको कहते हैं ?

उ० मिथ्याज्ञान एवं मिथ्यादर्शन पूर्वक जितना भी आचरण है, वह असम्यग् चारित्र कहलाता है। अहिंसा आदि पंच महाव्रतों को सम्यग् प्रकार से न समझना और न पालन करना अथवा समझते हुए भी

उसका यथाशक्ति पालन न करना और मन-कल्पित तरह तरह के वेश बनाना, असम्यक् चारित्र कहलाता है।

२३० प्र० क्रियात्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० क्रियावती शक्ति जीव द्रव्य में हमेशा रहती है और नित्य है। यह क्रियावती शक्ति जीव के जिस विशेष गुण के अन्तर्गत है वह क्रियात्व गुण कहलाता है। इसी गुण से जीव द्रव्य सदा गतिशील शक्ति से युक्त रहता है और संसार अवस्था में शुभाशुभ कर्म करता रहता है एवं अपने कर्मों के अनुसार मनुष्यादि गति के योग्य पर्याय को एवं एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को प्राप्त होता है। उसकी एक अवस्था से दूसरी अवस्था, एक पर्याय से दूसरी पर्याय बनती रहती है।

२३१ प्र० एक पर्याय दूसरी पर्याय को कैसे बनाती है ?

उ० जीव जब मनुष्य-पर्याय धारण करता है तो मनुष्य-शरीर की आकृति रूप में परिणत होता है। मनुष्य की आकृति पुद्गल की बनती है और उसी आकृति के रूप में जीव की पर्याय भी बन जाती है। यह जीव द्रव्य की पर्याय की दृष्टि से पुद्गल द्रव्य की पर्याय में गति हुई और पुद्गल द्रव्य की पर्याय की दृष्टि से जीव द्रव्य की पर्याय में गति हुई। इसी प्रकार अन्य गति में भी समझना चाहिए।

२३२ प्र० इस प्रकार से जीव द्रव्य क्रियावती शक्ति से पुद्गल द्रव्य की पर्याय में और पुद्गल द्रव्य जीव द्रव्य

की पर्याय में परिणत हो गया किन्तु कुछ कहते हैं जीव द्रव्य व पुद्गल द्रव्य की पर्याय परस्पर परिणत नहीं होती तो यह परिणति कैसे होती है ?

उ० द्रव्यों को एकान्त दृष्टि से समझने की चेष्टा करना भूल होगी । अपेक्षा दृष्टि से सही स्वरूप समझ में आ सकता है । सत् पदार्थ की मुख्य रूप से तीन अवस्थाएं रहती है—उत्पन्न होना, व्यय होना और दोनों अवस्था में एक सा अर्थात् ध्रौव्य रूप मे रहना । इन तीनों अवस्थाओं में जो ध्रौव्य अवस्था है वह एक दूसरे रूप में परिणत नहीं होती । पर्याय अवस्था तो एक दूसरी पर्याय में अवस्थान्तर होती रहती है ।

२३३ प्र० यदि एक द्रव्य की पर्याय का दूसरे द्रव्य की पर्याय में परिणत होना नही माना जाय तो क्या आपत्ति आ सकती है ?

उ० यदि पर्याय दृष्टि से भी एक द्रव्य की पर्याय का दूसरे द्रव्य की पर्याय में परिणत होना नही माना जाय तो जीव द्रव्य की मनुष्यादि गति पर्याय कभी भी नही वन सकेगी । ऐसी अवस्था में सम्यग् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, स्वभाव, विभाव मनुष्य, तिर्यञ्च आदि गति का व्यवहार, नीति, अनीति आदि समस्त वातों के विषय की स्थिति ही नहीं रहेगी और अराजकता, हिंसादि कार्य लूट-पाट व्यापक रूप में होने से यत्किंचित् शान्ति का आभास जो हो रहा है, वह भी समाप्त हो सकता

है एवं सारा विश्व ही घोरतम भयंकर आपत्ति में पड़ सकता है । इससे बढ़कर और क्या आपत्ति हो सकती है ?

२३४ प्र० कुछ व्यक्तियों का कहना है कि जीव और पुद्गल में अपनी अपनी क्रियावती शक्ति नामक गुण नित्य है और अपनी अपनी योग्यतानुसार किसी समय गति क्षेत्रान्तर रूप पर्याय होती है । किसी समय स्थिर रहने रूप पर्याय होती है । कोई भी अन्य द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक दूसरे को गतिशील या स्थिर नही कर सकते किन्तु दोनों द्रव्य अपनी अपनी क्रिया वती शक्ति की उस समय की योग्यता के अनुसा स्वतः गमन करते हैं या स्थिर रहते हैं । यह कथन कहां तक सत्य है ?

उ० यह कथन स्वयं में परस्पर विरुद्ध है क्योंकि ऊप के वाक्य जैसे "किसी समय गति क्षेत्रान्तर पय होवे" आदि । जीव द्रव्य की गति पर्याय मनुष्यादि और अन्य (दूसरे) क्षेत्र को क्षेत्रान्तर कहते है । अन्य अर्थात् दूसरा क्षेत्र जैसे जीव द्रव्य का दूसरा क्षेत्र पुद्गल द्रव्य रूप क्षेत्र की पर्याय होवे, अर्थात जीव द्रव्य अपनी क्रियावती शक्ति से पुद्गल द्रव जी की पर्याय रूप होता है और पुद्गल द्रव्य जी द्रव्य की पर्याय रूप में होता है । इस प्रकार ऊपर के वाक्य तो ठीक है पर नीचे के वाक्य में जो कहा गया कि "एक दूसरे को गतिशील व स्थिर नहीं करते"—यह गलत है, नितान्त मिथ्या है और ऊपर के वाक्य से कट जाता है । इसलिए परस्पर

विरुद्ध है। इस नीचे के वाक्य के अनुसार यदि वर्ताव हो तो उपरोक्त प्रकार से सारा विश्व भयंकर आपत्ति में पड़ सकता है।

२३५ प्र० यह बात अच्छी तरह समझ में आ गई कि जीव द्रव्य अपनी क्रियावती शक्ति से पर्यायान्तर (अवस्थान्तर) यानी जीव द्रव्य की पर्याय पुद्गल की पर्याय को और पुद्गल की पर्याय जीव द्रव्य की पर्याय को प्राप्त होती रहती है। इसी कारण से संसार की अवस्था में यह जीवात्मा परिभ्रमण करता रहता है पर क्रियावती शक्ति का गुण नित्य होने से संसार की अवस्था से छुटकारा कैसे होगा?

उ० सम्यग् ज्ञान एवं सम्यग् श्रद्धापूर्वक आचरण रूप चारित्र की अवस्था में इसी क्रियावती शक्ति के सही दिशा में लग जाने से, अज्ञान परिपूर्ण संसार अवस्था की समाप्ति और मोक्ष अवस्था की प्राप्ति होती है यानी सिद्ध स्वरूप पर्याय में यह आत्मा परिणत हो जाती है। फिर चतुर्गति रूप संसार की सदा के लिए समाप्ति हो जाती है।

२३६ प्र० चतुर्गति रूप संसार की समाप्ति हो जाने पर क्रियावती शक्ति का क्या होगा? वह सिद्ध अवस्था रूप पर्याय में जीव द्रव्य में रहेगी या नहीं?

उ० सिद्ध अवस्था रूप जीव द्रव्य की पर्याय होने पर भी क्रियावती शक्ति विद्यमान रहेगी, क्योंकि वह सदा रहने वाली शक्ति रूप गुण है।

२३७ प्र० सिद्ध अवस्था रूप पर्याय में क्रियावती शक्ति का

क्या फल होगा ?

उ० सिद्ध अवस्था रूप जीव द्रव्य में भी पर्यायान्तर अवस्था रहती है क्योकि सिद्ध अवस्था में भी जीव द्रव्य सद् रूप रहता है और सद् का लक्षण, 'उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रूप माना गया है।
(उत्पाद, व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्-तत्त्वार्थ सूत्र)

२३८ प्र० वहां सिद्ध अवस्था में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रूप तीनों अवस्थाएं कैसे बनती हैं ?

उ० चतुर्गति संसार में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप का स्पष्ट दृश्य देखा जा रहा है। यह दृश्य सिद्ध भगवान् के ज्ञान गुण में है। उसी ज्ञान की उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप अवस्थाएं बनती रहती हैं क्योंकि जो पदार्थ जिस अवस्था में हैं, सिद्ध भगवान् के ज्ञान में भी वह पदार्थ उसी अवस्था में भाषित होता है। दूसरी बात यह है कि सिद्ध पर्याय रूप अवस्था में जीव द्रव्य की उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य अवस्था रूप तीनों पर्याय यदि नही होती हैं तो सद् द्रव्य का लक्षण सिद्ध अवस्था में नहीं रहेगा और यह लक्षण नहीं रहेगा तो सिद्ध भगवान् की आत्मा का सद्रूप नहीं रहेगा। वस्तुतः ऐसा नहीं है। सिद्ध भगवान् भी सद् द्रव्य रूप है, इसलिए तीनों अवस्थाएं उनमें पाई जाती हैं। अतः दोनों दृष्टि से सिद्ध अवस्था में भी जीव द्रव्य की अवस्थान्तर पर्याय सिद्ध हो जाती है। इसलिए क्रियावती शक्ति वहां पर भी रहती है।

२३९ प्र० सिद्ध अवस्था में पर्यायान्तर क्या चतुर्विधगति के

पर भी पुद्गल द्रव्य की पर्याय के रूप में सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों के गत्यान्तर आदि की स्थिति वनने का कार्य न होने की अपेक्षा से अक्रिय कहलाता है, सक्रिय नहीं, क्योंकि वे अकरणवीर्य वाले होते हैं।

२४१ प्र० कर्तृत्व गुण किसको कहते है ?

उ० जिस शक्ति के माध्यम से व्यवस्थित निर्माण करने की कला हो, वह कर्तृत्व शक्ति कहलाती है। उसी कर्तृत्व शक्ति का चमत्कार यत्र तत्र सर्वत्र परिलक्षित हो रहा है।

२४२ प्र० शुभ या अशुभ कर्मो का उपार्जन कौन करता है ?

उ० शुभ या अशुभ कर्मों का उपार्जनकर्त्ता, जीव द्रव्य है क्योंकि व्यवस्थित कर्तृत्व-विज्ञान उसी में है। चैतन्य कर्तृत्वशक्ति से रहित सिर्फ जड़ में व्यवस्थित कर्तृत्व शक्ति नहीं होती।

२४३ प्र० भोक्तृत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति के माध्यम से शुभाशुभ कर्मफलों का तथा शुद्ध अवस्था के आनन्द का अनुभव किया जाय, वह भोक्तृत्व गुण कहलाता है।

२४४ प्र० जीवत्व गुण किसको कहते हैं ?

उ० जिस शक्ति से आत्मा प्राणवान् कहलाये, उसको जीवत्वगुण कहते हैं।

२४५ प्र० प्राण किसको कहते है ?

उ० जिसकी विद्यमानता से जीव द्रव्य प्राणी कहलाये, उसे प्राण कहते हैं।

२४६ प्र० प्राण के कितने भेद हैं ?

उ० प्राण के दो भेद है (१) द्रव्य प्राण और (२) भाव प्राण ।

२४७ प्र० द्रव्य प्राण किसको कहते हैं ?

उ० जिसके माध्यम से जीव स्पर्श आदि का अनुभव कर सके, वह द्रव्य प्राण है।

२४८ प्र० द्रव्य प्राण के कितने भेद है? वे कौन कौन से है?

उ० द्रव्य प्राण के दस भेद है। वे निम्न है:—

[१] श्रोतेन्द्रिय बल प्राण [२] चक्षुइन्द्रिय बल प्राण [३] घ्राणेन्द्रिय वल प्राण [४] रसनेन्द्रिय वल प्राण [५] स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण [६] मनोबल प्राण [७] वचन बल प्राण [८] काय बल प्राण [९] श्वासोच्छ्वास वल प्राण और [१०] आयुष्य वल प्राण ।

२४९ प्र० भाव प्राण किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं?

उ० जिस आत्मीय शक्ति के समवधान पूर्वक द्रव्य बल प्राण कार्यान्वित होते रहते है, उस शक्ति को भाव प्राण कहते है । भाव प्राण के मुख्य चार भेद, दस भेद अथवा अपेक्षा से अनेक भेद हैं ।

२५० प्र० भाव प्राण के मुख्य चार भेद कौन से हैं ?

उ० [१] ज्ञान, [२] दर्शन [३] सुख और [४] वीर्य ।

२५१ प्र० भावप्राण के दस भेद कौनसे हैं ?

उ० जो दस द्रव्य प्राण बताये गये हैं, उनको कार्यान्वित करने की जो आत्मीय शक्ति है, वही शक्ति द्रव्य प्राणों के पीछे विभिन्न रूप से कार्य करती है। उस

भिन्नता की अपेक्षा से भाव-प्राण भी दस कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार अपेक्षा से अनेक भी कहे जा सकते हैं।

२५२ प्र० जीव के कितने भेद है?

उ० जीव के भेद अनन्त है लेकिन संक्षेप में सर्व प्रथम दो भेद किये जा सकते हैं (१) सिद्ध (२) संसारी

२५३ प्र० सिद्ध किसको कहते है?

उ० जिन आत्माओं ने समग्र रूप से आठों ही कर्मों को नष्ट कर दिया है, वे सिद्ध कहलाते है।

२५४ प्र० सिद्धों के कितने भेद हैं?

उ० एक दृष्टि से दो भेद हैं (१) अनन्तरसिद्ध और (२) परम्परा सिद्ध।

२५५ प्र० अनन्तर सिद्ध किसको कहते हैं?

उ० जिन आत्माओं ने तत्काल सिद्ध-अवस्था प्राप्त की है, वे अनन्तर सिद्ध कहलाते है।

२५६ प्र० परम्परा-सिद्ध किसको कहते है।

उ० जिन आत्माओं को सिद्ध अवस्था प्राप्त किये अधिक समय हो गया है, वे परम्परा सिद्ध कहलाते हैं।

२५७ प्र० दूसरी दृष्टि से सिद्धों के कितने भेद हैं?

उ० दूसरी दृष्टि से सिद्धों के १५ भेद है। वे जिन अवस्थाओं से सिद्ध हुये हैं, उनकी अपेक्षा से उनके भेद इस प्रकार है—

(१) तीर्थ सिद्धा (२) अतीर्थ सिद्धा (३) तीर्थ-कर सिद्धा (४) अतीर्थकर सिद्धा (५) स्वयं बुद्ध सिद्धा (६) प्रत्येक बुद्ध सिद्धा (७) बुद्धबोधि

सिद्धा (८) पुरुष लिग सिद्धा (९) स्त्रीलिग सिद्धा (१०) नपुंसक लिग सिद्धा (११) स्वलिग सिद्धा (१२) अन्यलिंग सिद्धा (१३) गृहलिग सिद्धा (१४) एक सिद्धा और (१५) अनेक सिद्धा ।

२५८ प्र० तीर्थ सिद्धा किसे कहते हैं ?

उ० तीर्थंकर भगवान् के द्वारा चतुंविध सघ (तीर्थं) की स्थापना होने पर अथवा तीर्थं स्थापना प्रारम्भ होने पर जिन आत्माओं ने सिद्ध अवस्था प्राप्त की हो, वे तीर्थ सिद्धा कहलाते है ।

२५९ प्र० अतीर्थ सिद्धा किसको कहते है ?

उ० तीर्थ स्थापना के प्रारम्भ से पहले अथवा तीर्थ-विच्छेद हो जाने पर जिन आत्मओं ने सिद्ध अवस्था प्राप्त की हो, वे अतीर्थ सिद्धा कहलाते है।

२६० प्र० तीर्थंकर सिद्धा किसको कहते है ?

उ० तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति के उदय-अवस्था में चतुर्विध संघ की स्थापना करने के पश्चात् तीर्थं-कर पद की अवस्था से जिन आत्माओं ने सिद्ध अवस्था प्राप्त की हो, उन्हे तीर्थकर सिद्धा कहते है ।

१६१ प्र० अतीर्थकर सिद्धा किसको कहते हैं ?

उ० तीर्थकर पद की अवस्था से रहित साधारण स्थिति से केवल ज्ञानादि प्राप्त कर जिन आत्माओं ने सिद्ध अवस्था प्राप्त की हो, वे अतीर्थकर सिद्धा कहलाते हैं।

२६२ प्र० स्वयंबुद्ध सिद्धा किसको कहते है ?

उ० स्वय को ही ध्यानादि शक्ति से केवल ज्ञानादि प्राप्त कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुये हो, वे स्वयं बुद्ध

सिद्धा कहलाते हैं ।

२६३ प्र० प्रत्येक बुद्ध सिद्धा किसको कहते हैं ?
उ० वृक्ष आदि किसी पदार्थ के निमित्त से आत्मशक्ति
को जागृत कर जिन आत्मओं ने सिद्ध अवस्था
प्राप्त की हो, उन्हें प्रत्येक बुद्ध सिद्धा कहते हैं ।

२६४ प्र० बुद्ध–बोधित सिद्ध किसे कहते है ?
उ० तीर्थकर धर्माचार्य आदि के उपदेश से बोध पाकर
जो मोक्ष अवस्था प्राप्त करते है, उन्हे बुद्ध बोधित
सिद्ध कहते है ।

२६५ प्र० स्त्रीलिङ्ग सिद्धा किसे कहते हैं ?
उ० स्त्री–शरीर की अवस्था से जो सिद्ध अवस्था प्राप्त
करते हैं, उन्हें स्त्रीलिङ्ग सिद्धा करते है ।

२६६ प्र० पुरुष लिङ्ग सिद्धा किसे कहते है ?
उ० पुरुष–शरीर की अवस्था से जो सिद्ध अवस्था को
प्राप्त होते हैं, उन्हे पुरुष लिङ्ग सिद्धा कहते हैं ।

२६७ प्र० नपुंसक लिङ्ग सिद्धा किसको कहते हैं ?
उ० नपुंसक अवस्था के शरीर से जो सिद्ध अवस्था
प्राप्त करते हैं, उन्हें नपुंसक लिङ्ग सिद्धा कहते है

२६८ प्र० नपुंसक लिङ्ग सिद्धा कौन से नपुंसक हो सकते
है ? जन्मजात अथवा कृत ?
उ० कृत नपुंसक सिद्ध होते हैं, जन्मजात नपुंसक सि
नहीं होते ।

२६९ प्र० जन्मजात नपुंसक सिद्ध क्यों नहीं होते ?
उ० जन्मजात नपुंसक को दीक्षा भी नहीं दी जा
सकती । यदि भूल से विना जानकारी से दीक्षा दे

भी दी गई हो तो ज्ञात होने पर निकाल दिया जाता है क्योकि उसकी वृत्ति साधुत्व के योग्य नहीं होती ।

२७० प्र० जन्मजात नपुंसक साधुत्व के योग्य नहीं होते परन्तु उन्हें मोक्ष क्यों नहीं हो सकती ?

उ० पूर्ण रूपेण साधुत्व की योग्यता प्राप्त होने पर ही सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है । सम्यग् ज्ञान पूर्वक साधुमय जीवन (संयम) के विना सिद्ध अवस्था की प्राप्ति सम्भव नही होती ।

२७१ प्र० स्वलिङ्ग सिद्धा कौन कहलाते है ?

उ० तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट मुख वस्त्रिका, रजोहरण आदि के साथ सम्यग् ज्ञानादि पूर्वक पंच महाव्रतादि स्वरूप स्वलिङ्ग में जिन्होने सिद्ध अवस्था प्राप्त की है, वे स्वलिङ्ग सिद्धा कहलाते हैं ।

२७२ प्र० अन्यलिङ्ग सिद्ध कौन कहलाते है ?

उ० पोशाक (लिङ्ग) अन्य समाज का हो पर ध्यान-स्थ अवस्था मे सम्यग् ज्ञानादि महाव्रतों की अव-स्था आ जाय और अन्तर्मुहूर्त में ही उच्च गुण स्थानों में पहुंचता हुआ सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाय, वे अन्य लिङ्ग सिद्धा कहलाते है।

२७३ प्र० गृहलिङ्ग सिद्धा किसे कहते है ?

उ० द्रव्य पोशाक गृहस्थ की हो पर ध्यान अवस्था में सम्यग् ज्ञानादि पूर्वक महाव्रतो आदि की आराधना से उसी ध्यान मे उच्च गुण स्थानों में होते हुये जिसने सिद्ध अवस्था प्राप्त करली हो, उसे गृह-लिङ्ग सिद्धा कहते हैं ।

२७४ प्र० ध्यान अवस्था में यदि सम्यग् ज्ञानादि पूर्वक महाव्रतों की आराधना करके ही सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो सकते है तो फिर महाव्रतों की आराधना करते समय मुख वस्त्रिका, रजोहरण आदि वेश क्यों नहीं धारण कर लेते ?

उ० उसी ध्यान अवस्था में ही उनका आयुष्य पूर्ण हो जाने से वे मुख वस्त्रिका, रजोहरण आदि धारण नही कर पाते । इसी अपेक्षा से अन्यलिङ्ग गृहलिङ्ग आदि सिद्ध कहे गये हैं । सम्यग् ज्ञानादि पूर्वक, महाव्रतादि के साथ ध्यानादि श्रेणी के पश्चात् केवलज्ञान हो जाने पर भी यदि आयुष्य अवशेष रहे तो वेश आदि धारण करके ही सिद्ध अवस्था को प्राप्त होते है और फिर वे अन्यलिङ्ग अथवा गृहलिङ्गादि की अवस्था में न रह कर स्वलिङ्ग मे आ जाते है जैसे सोमचन्द्र, बलकलचिरी, भरतादि

२७५ प्र० एक सिद्ध किसको कहते हैं ?

उ० एक समय मे जो एक ही आत्मा सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो, उसे एक सिद्ध कहते हैं।

२७६ प्र० अनेक सिद्ध किन्हें कहते है ।

उ० एक समय में एक से अधिक उत्कृष्ट १०८ तक सिद्ध अवस्था को प्राप्त होने वाली आत्माओं को अनेक सिद्ध कहते हैं ।

२७७ प्र० क्या सिद्धों के अन्य भेद भी हैं ?

उ० अपेक्षा दृष्टि से अन्य भेद भी हो सकते हैं ।

२७८ प्र० संसारी जीव कौन कहलाते है ?

उ० जो कर्मों से युक्त हों, वे जीव संसारी कहलाते हैं।

२७६ प्र० संसारी जीवों के कितने भेद है ?

उ० संक्षिप्त में संसारी जीवों के दो भेद है (१) स्थावर और (२) त्रस।

२८० प्र० स्थावर जीव किसको कहते हैं ?

उ० स्थावर नाम कर्म के उदय से जिन्हें स्पर्श इन्द्रिय स्वरूप शरीर मिला है, उन्हे स्थावर जीव कहते है।

२८१ प्र० पृथ्वी, पृथ्वीकाय और पृथ्वीकायिक इन शब्दों के अर्थ में क्या भिन्नता है ?

उ० पृथ्वी से अणु और स्कन्ध रूप सचित और अचित पृथ्वीकाय का ग्रहण होता है, जबकि पृथ्वीकाय से उनके समूह का ग्रहण होता है और पृथ्वीकायिक से जीवयुक्त सचित पृथ्वीकाय के जीवों का ग्रहण होता है, अचित का नही। इसी प्रकार अन्य स्थावर काय के लिए समझ लेना चाहिए।

२८२ प्र० स्थावर जीव के कितने भेद हैं ?

उ० स्थावर जीव के मुख्य भेद दो हैं (१) वादर (२) सूक्ष्म।

२८३ प्र० वादर जीव किसे कहते हैं ?

उ० वादर नाम कर्म के उदय से जिन आत्माओं को स्पर्शेन्द्रिय स्वरूप मिला हो, उन्हे वादर जीव कहते है

२८४ प्र० वादर जीव के भेद कितने है ?

उ० संक्षेप में वादर जीव के पांच भेद है।

२८५ प्र० वादर जीव के पांच भेद कौन कौन से है ?

उ० (१) पृथ्वीकायिक (२) अप्कायिक (३) तेज

[

कायिक (४) वायु कायिक (५) वनस्पति कायिक।

२८६ प्र० पृथ्वी कायिक जीव किसे कहते है ?

उ० जिन आत्माओं का शरीर पृथ्वीत्वमय हो, उन्हें पृथ्वीकायिक जीव कहते हैं। जैसे मिट्टी, मुरड़, तांवा, भोडल खड़ी, गेरू, हिंगलू, हरताल, सोना, चांदी, लोहा, स्फटिक मणिरत्नादि।

२८७ प्र० अपकायिक जीव किसे कहते है ?

उ० जिन आत्माओं का शरीर जलत्वमय हो, उन्हें अपकायिक जीव कहते हैं। जैसे ओस, हिम, तालाब, नल वावड़ी बरसात आदि का पानी।

२८८ प्र० तेउकायिक जीव किसे कहते है ?

उ० जिन आत्माओं का शरीर प्रकाशकत्व एवं उष्णत्वमय हो, उन्हें तेउकायिक जीव कहते हैं। जैसे काष्ठ की अग्नि, विजली की अग्नि, कोयले की अग्नि, झाल, टूटती झाल, उल्कापात आदि संघर्ष से उत्पन्न होने वाली अग्नि।

२८९ प्र० वायु कायिक जीव किसको कहते है ?

उ० जिन आत्माओं का शरीर वायुत्वमय हो, उन्हें वायु कायिक जीव कहते है। जैसे उत्कलिक हवा, मंडलिक हवा, घन वायु, तनु वायु, गुंज वायु, शुद्ध वायु आदि।

२९० प्र० वनस्पति कायिक जीव कि

उ० जिन आत्माओं का शरीर

वनस्पतिकायिक [illegible] कह

कंद मूल, फ

२९१ प्र० पृथ्वीकायिकादि लक्षण के प्रसङ्ग से पृथ्वीत्व आदि में 'त्व' का क्या अर्थ है ?

उ० 'त्व' लगाने से सभी प्रकार की पृथ्वी का ग्रहण हो जाता है। कोई भी प्रकार अवशेष नहीं रहता।

२९२ प्र० सूक्ष्म जीव किसको कहते हैं ?

उ० सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जिन आत्माओं को स्पर्शेन्द्रिय युक्त सूक्ष्म शरीर मिला है, उन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं। सूक्ष्म को निगोद भी कहते हैं।

२९३ प्र० वादर जीव और सूक्ष्म जीव में क्या भेद है ?

उ० जो पृथ्वी आदिक के यथायोग्य अवस्थान से स्वयं रुके तथा दूसरों को भी रोके, एवं स्वयं मरे, दूसरों को मारने में निमित्त वने, तथा जिनका छेदन, भेदन, दहन आदि क्रिया द्वारा जलना आदि होना शक्य हो, वे स्थूल वादर जीव कहलाते है और पृथ्वी आदिक के यथा- योग्य अवस्थान से भी जो न स्वयं रुके, न दूसरे को रोकने में निमित्त आदि वने, न किसी के कार्य में आवे तथा जिनका तलवार आदि से छेदन-भेदन न हो, न दहन आदि क्रिया से जिनका जलनादि कार्य हो, उनको सूक्ष्म जीव कहते हैं।

२९४ प्र० वादर जीव और सूक्ष्म जीव क्या चरम चक्षु के दृष्टिपथ में आ सकते है ?

उ० वादर शरीरयुक्त जीव चरम चक्षु के दृष्टिपथ में आ सकते है परन्तु सूक्ष्म शरीर युक्त जीव चरम चक्षु के दृष्टिपथ मे विलकुल नही आ सकते।

मुख्य रूप से दोनों में उक्त भेद है।

२९५ प्र० इन पांचों स्थावर कायिक के जीवों में किनके विशिष्ट भेद हैं ?

उ० अवान्तर जाति सामान्य भेद सबमें है परन्तु वनस्पति में विशिष्ट भेद भी है।

२९६ प्र० बादर वनस्पति में विशिष्ट भेद कितने है ?

उ० बादर वनस्पति में विशिष्ट भेद मुख्यतः दो हैं (१) प्रत्येक और (२) साधारण।

२९७ प्र० प्रत्येक वनस्पति किसको कहते हैं ?

उ० जिस वनस्पति के बारीक जड़ तन्तुओं से लेकर ऊपर की सब कोपलों तक मुख्य रूप से एक ही जीव (स्वामी रूप से) व्याप्त होकर रहता हो, उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। जैसे आम, इमली, बबूल, जामुन, निम्बू आदि।

२९८ प्र० क्या आम आदि में नीचे से ऊपर तक एक ही जीव व्याप्त होकर रहता है ? अन्य नहीं ?

उ० नीचे से ऊपर तक मुख्य रूप से तो एक ही जीव व्याप्त होकर रहता है परन्तु उसी के आश्रय से अन्य अनेक जीव भी रह सकते हैं और जन्मते मरते भी रहते है। उनके जन्मने और मरने का उस वृक्ष पर कोई खास असर नहीं होता लेकिन उस मुख्य जीव के निकल जाने से वह झाड़ सूख जाता है।

२९९ प्र० क्या प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित रूप से भी भेद होते है ?

उ० ऊपर जो प्रत्येक वनस्पति की पहिचान बताई है, उसे कई विद्वान् दो भागों मे विभक्त कर सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित पृथग् पृथग् नाम दे देते हैं।

३०० प्र० वे विद्वान् कैसे भेद करके नाम देते हैं ?

उ० जिस प्रत्येक वनस्पति के मुख्य जीव के आश्रय में अन्य साधारण जीव भी रहते हैं, उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के नाम से और जिस मुख्य जीव के आश्रय में अन्य साधारण जीव न हो, उसको अप्रतिष्ठित नाम से पुकारते हैं।

३०१ प्र० साधारण वनस्पति किसे कहते हैं ?

उ० जिस वनस्पति मे एक ही स्पर्शेन्द्रिय स्वरूप औदारिक शरीर के आश्रय में अनन्त जीव रहते हों अर्थात् वे अनन्त जीव उसी शरीर के माध्यम से समान रूप से आहार, श्वासोच्छ्‌वास आदि लेते हों तथा आयुष्य भी सभी का साथ में ही समाप्त होता हो, उसे साधारण वनस्पति कहते हैं। इसे निगोद भी कहते है।

सूई के अग्र भाग में आवे, इतने निगोद में असंख्य प्रतर (पन्नों के समान), एक प्रतर में असंख्यात श्रेणियां (लकीर के समान), एक एक श्रेणी में असंख्य गोले (अक्षर के समान), एक एक गोले मे असंख्य शरीर, एक एक शरीर में अनन्त जीव होते है।

३ प्र० निगोद के कितने प्रकार हैं ?

उ० निगोद के संक्षिप्त मे दो प्रकार हैं (१) व्यवहार

राशि और (२) अव्यवहार राशि।

३०३ प्र० व्यवहार राशि किसे कहते हैं ?

उ० अव्यवहार, राशि (जिसे कई नित्य निगोद भी कहते है) की अवस्था छोड़कर जो जीव एक बार भी त्रस आदि अवस्था में आकर फिर चाहे निगोद राशि अवस्था में चला जाय, उस अवस्था को व्यवहार कहते हैं (इतर निगोद भी कह सकते हैं)।

३०४ प्र० अव्यवहार राशि किसे कहते है ?

उ० जिन आत्माओं ने अनादि काल से निगोद अवस्था प्राप्त कर रखी हो और कभी भी उस अवस्था से बाहर आने का प्रसंग नही आया हो, ऐसी आत्माओं की उस अवस्था को अव्यवहार राशि कहते हैं।

३०५ प्र० बादर जीव और सूक्ष्म जीव में कौन कौन सी जाति के जीव सम्मिलित हैं ?

उ० पृथ्वी कायिक जीव, अपकायिक जीव, तेउकायिक जीव, वायु कायिक जीव और साधारण वनस्पति कायिक जीवों के व्यवहार और अव्यवहार दोनों राशियों के निगोद, बादर और सूक्ष्म जाति के जीवों में सम्मिलित हैं।

३०६ प्र० प्रत्येक वनस्पति भी क्या बादर और सूक्ष्म होती है?

उ० प्रत्येक वनस्पति के जीव बादर ही होते हैं, सूक्ष्म नही।

३०७ प्र० क्या पांच सूक्ष्म स्थावर कायिक जीवों के अतिरिक्त सभी जीव बादर होते हैं अथवा सूक्ष्म भी होते हैं ?

उ० उपरोक्त स्थिति के अतिरिक्त पांच स्थावर के जितने

भी प्राणी होते हैं, वे वास्तविक सूक्ष्म (जिनका लक्षण ऊपर दिया गया है) नहीं होते। सभी वादर ही होते हैं पर कभी कभी वादर जीवों को भी अपेक्षा दृष्टि से छोटे जीवों को सूक्ष्म शब्द से पुकार लेते हैं परन्तु वे वस्तुतः सूक्ष्म नही होते।

३०८ प्र० त्रस जीव किसको कहते हैं ?

उ० त्रस नाम कर्म के उदय से जो जीव दुःख से त्रास पाता है, सर्दी, गर्मी आदि जनित दुःखों से बचने के लिए गमनागमन करता है और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय संज्ञक अवस्थाओं को धारण करता है, उसे त्रस जीव कहते है।

३०९ प्र० इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ० जिनकी उपस्थिति से आत्मा की पहचान व अभिव्यक्ति हो, उनको इन्द्रिय कहते हैं।

३१० प्र० इन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उ० सामान्य रूप से इन्द्रिय के दो भेद हैं (१) द्रव्येन्द्रिय और (२) भावेन्द्रिय।

३११ प्र० द्रव्येन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ० यथायोग्य नाम कर्म के उदय से पुद्गल द्रव्य की रचना विशेष को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

३१२ प्र० द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उ० संक्षिप्त रूप से द्रव्येन्द्रिय के दो भेद हैं (१) निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय और (२) उपकरण द्रव्येन्द्रिय।

३१३ प्र० निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ० द्रव्येन्द्रिय के लिए निर्मित रचना विशेष को निर्वृत्ति

द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

३१४ प्र० निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उ० संक्षिप्त में निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय के दो भेद हैं— (१) बाह्य निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय और (२) आभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय ।

३१५ प्र० बाह्य निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ० द्रव्येन्द्रिय के बाह्य आकार के निर्माण की रचना विशेष को बाह्य निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

३१६ प्र० आभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ० निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय के आन्तरिक पुद्गलों की रचना विशेष को आभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

३१७ प्र० कई व्यक्ति आत्मा के विशुद्ध प्रदेशों की इन्द्रियाकार रचना विशेष को भी अभ्यान्तर निर्वृत्ति कहते हैं । क्या यह सत्य है ?

उ० (क) नहीं, क्योंकि यह भेद द्रव्येन्द्रिय के चल रहे है, द्रव्येन्द्रिय पुद्गल स्वरूप है, अतः पुद्गलों की आन्तरिक रचना विशेष ही आभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रिय हो सकती है । आत्मा के विशुद्ध प्रदेशों की रचना नहीं ।

(ख) इन्द्रियाकार में विशुद्ध आत्मप्रदेशों की बात कहना सिद्धान्त विरुद्ध भी है क्योंकि देहेन्द्रियधारी आत्माओं के विशुद्ध आत्मप्रदेश हो ही नहीं सकते। केवली व सिद्ध अवस्था के पूर्व (पहले) आत्मप्रदेश कर्म वर्गणा के पुद्गलों से ओतप्रोत होने से अशुद्ध रहते हैं। अतः इन्द्रियाकार में आत्मा के विशुद्ध प्रदेशों का रहना सम्भव नहीं है ।

११८ प्र० उपकरण द्रव्येन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ० निर्वृत्ति इन्द्रिय का उपकार करने वाली पुद्गल की रचना विशेष को (जिसके बिना निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय के रहने पर भी विषय ग्रहण नही हो सके) उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहते है । जैसे श्रोतेन्द्रिय का आकार कदम्ब पुष्प के समान, चक्षु इन्द्रिय का आकार मसूरदाल के समान, घ्राणेन्द्रिय का तिल के फूल के समान, रसनेन्द्रिय का खुरपा के समान, और स्पर्शेद्रिय का नाना प्रकार होता है ।

११९ प्र० उपकरण द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद है ?

उ० उपकरण द्रव्येन्द्रिय के दो भेद है । (१) बाह्य उपकरण द्रव्येन्द्रिय और (२) आभ्यन्तर उपकरण द्रव्येन्द्रिय ।

१२० प्र० बाह्य उपकरण द्रव्येन्द्रिय किसको कहते है ?

उ० बाह्य (बाहर) दीखने वाले नेत्र के श्वेत और काले आदि भाग को बाह्य उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

१२१ प्र० आभ्यन्तर उपकरण द्रव्येन्द्रिय किसे कहते है ?

उ० बाह्य उपकरण द्रव्येन्द्रिय के अन्दर के तीक्ष्ण भाग को आभ्यन्तर द्रव्येन्द्रिय कहते हैं, जैसे चक्षुः इन्द्रिय के उपकरण का स्वरूप है, वैसे ही अन्य इन्द्रिय के स्व-स्व योग्य निर्वृत्ति इन्द्रिय का उपकार करने वाला बाह्य और आभ्यन्तर भाग समझ लेना चाहिये ।

१२२ प्र० निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय और उपकरण द्रव्येन्द्रिय में

सामान्य क्या भेद हैं ?

उ० दोनों पुद्गलमय हैं। निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय, स्व-स्व इन्द्रियों के भीतरी और वाहरी योग्य आकार की निर्माण सम्वन्धी रचना है (जैसे श्रोतेन्द्रिय की कदम्ब पुष्प के समान, चक्षुरिन्द्रिय की मसूर दाल के समान, घ्राणेन्द्रिय की तिल के फूल के समान रसनेन्द्रिय की खुरपा के समान और स्पर्शेन्द्रिय की नाना प्रकार की आंतरिक और बाह्य रचना है) और उसी रचना को सफल बनाने वाले श्वेत काले आदि अत्यन्त उपकारी तलवार और तलवार की धार के समान बाह्य और भीतरी भाग विशेष को उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहा गया है, यही दोनों में भेद है।

३२३ प्र० भावेन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ० आत्मीय शक्ति विशेष को भावेन्द्रिय कहते हैं।

३२४ प्र० भावेन्द्रिय के भेद कितने हैं ?

उ० भावेन्द्रिय के मुख्यतः दो भेद हैं (१) लब्धि और (२) उपयोग।

३२५ प्र० लब्धि किसको कहते हैं ?

उ० ज्ञानावरणीयादि तत् तत् कर्मों के क्षयोपशम आदि से जो शक्ति उपलब्ध होती है, उसे लब्धि कहते है।

३२६ प्र० उपयोग किसे कहते हैं ?

उ० क्षयोपशम जन्म आत्मीय लब्धि शक्ति का तत् तत् इन्द्रिय प्रयोग के साथ लगना, उपयोग कहलाता है।

३२७ प्र० द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उ० द्रव्येन्द्रिय के पांच भेद हैं। (१) स्पर्शेन्द्रिय

(२) रसनेन्द्रिय (३) घ्राणेन्द्रिय (४) चक्षुरिन्द्रिय और (५) श्रोतेन्द्रिय।

३२८ प्र० स्पर्शेन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ० जिस इन्द्रिय के माध्यम से मुख्य रूप से स्पर्शत्व सम्वन्धी आठ प्रकार का यथा योग्य ज्ञान हो, उसको स्पर्शेन्द्रिय कहते है ?

३२९ प्र० रसनेन्द्रिय किसको कहते है ?

उ० जिसके माध्यम से रसत्व सम्वन्धी ज्ञान हो, उसे रसनेन्द्रिय कहते है।

३३० प्र० घ्राणेन्द्रिय किसको कहते है ?

उ० जिसके माध्यम से गंधत्व सम्वन्धी ज्ञान हो, उसे घ्राणेन्द्रिय कहते है।

३३१ प्र० चक्षुरिन्द्रिय किसको कहते है ?

उ० जिसके माध्यम से रूपत्व सम्वन्धी ज्ञान हो, उसे चक्षुरिन्द्रिय कहते है।

३३२ प्र० श्रोतेन्द्रिय किसको कहते है ?

उ० जिसके माध्यम से शब्दत्व सम्वन्धी ज्ञान हो, उसे श्रोतेन्द्रिय कहते है ?

३३३ प्र० कम से कम कितनी द्रव्येन्द्रिय प्राप्त होती है ?

उ० कम से कम एक द्रव्येन्द्रिय प्राप्त होती है।

३३४ प्र० एक द्रव्येन्द्रिय वाले जीवों के कौनसी द्रव्य इन्द्रिय होती है ?

उ० एक द्रव्य इन्द्रिय वाले जीवों के केवल स्पर्शेन्द्रिय होती है।

३३५ प्र० स्पर्शेन्द्रिय वाले जीवों को किस किस नाम से पुकारा जाता है ?

उ० स्पर्शेन्द्रिय वाले जीवों को पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय तथा इन्हीं के अवान्तर भेदों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है ।

३३६ प्र० द्वीन्द्रिय वाले जीवों के कौन कौन सी इन्द्रियां होती है ?

उ० द्वीन्द्रिय वाले जीवों के (१) स्पर्शेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय ये दोनों इन्द्रियां होती हैं ।

३३७ प्र० इन दो इन्द्रियों वाले जीव किस किस नाम से पहिचाने जाते हैं ?

उ० ये दो इन्द्रियों वाले जीव लट, गिंडोला, अलसिया, शंख, शंखोलिया आदि अनेक नामों से पुकारे जाते है ।

३३८ प्र० तीन इन्द्रियों वाले जीवों के कौन कौन सी इन्द्रियां एक साथ होती हैं ?

उ० तीन इन्द्रियों वाले जीवों के स्पेर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय ये तीनों ही एक साथ रहती है।

३३९ प्र० त्रीन्द्रिय जीव किस किस नाम से पहचाने जाते हैं ?

उ० त्रीन्द्रिय जीव चींटी, (कीड़ी) मकोड़ा, जूं, लीख, मत्कुण, उदई, खजूरिया, धनेरिया आदि २ अनेक नामों से पहचाने जा सकते हैं ।

३४० प्र० चतुरिन्द्रिय जीव के एक साथ कौन कौन सी इन्द्रियां होती है ?

उ० चतुरिन्द्रिय जीव के स्पर्शना, रसना, घ्राण और चक्षुः ये चार इन्द्रियां एक साथ होती है।

३४१ प्र० चतुरिन्द्रिय जीव किन किन नामों से पहिचाने जाते हैं ?

उ० चतुरिन्द्रिय जीव मक्खी, मच्छर, टीडी, पतंगा आदि अनेक नामों से जाने जा सकते हैं।

३४२ प्र० पांचों इन्द्रियां एक साथ किन किन जीवों के होती है ?

उ० पांचों इन्द्रियां एक साथ गाय, भैंस, घोडा, ऊंट, हाथी, सर्प आदि अनेक नामों वाले तिर्यंच मनुष्य, नारक, देव और इनके अवान्तर भेद के विभिन्न प्रकार में तथा उनमे भी विभिन्न नामो से संबोधित किये जाने वाले जीवों में होती है।

३४३ प्र० पंचेन्द्रिय के कितने भेद है ?

उ० पंचेन्द्रिय के मुख्य चार भेद है (१) नारक (२) तिर्यन्च (३) मनुष्य और (४) देव।

३४४ प्र० नारक जीव किसे कहते है ?

उ० नरक नाम कर्म के उदय से जो जीव नरक में उत्पन्न होते है उन्हे नारक जीव कहते है।

३४५ प्र० नरक क्या है ?

उ० नरक एक स्थान विशेष है (अत्यधिक पाप करने वाली आत्मा नरक में उत्पन्न होती है)।

३४६ प्र० नरक के कितने भेद है ?

उ० नरक के मुख्य सात भेद है।

३४७ प्र० नरक के सात भेद कौन कौन से हैं ? और उनके नाम क्या हैं ?

उ० (१) घम्मा (२) वंसा (३) सीला (४) अंजणा (५) रिट्ठा (६) मघा और (७) माघवई ।

३४८ प्र० क्या उपरोक्त स्थानों को अन्य नामों से भी पुकारा जाता है ?

उ० हां, इन सातों की गोत्र से भी पहचान की जाती है।

३४९ प्र० वे गोत्र कौन कौन से हैं ?

उ० (१) रत्न प्रभा (२) सक्कर प्रभा (शर्कराप्रभा) (३) वालुका प्रभा (४) पंक प्रभा (५) धम प्रभा (६) तमः प्रभा और (७) तमः तमः प्रभा (तमस्तमः प्रभा) ।

३५० प्र० तिर्यंच किसे कहते हैं ?

उ० तिर्यंच गति नाम कर्म के उदय से जिन आत्माओं का प्रायः तिरच्छे (टेढ़े-मेढ़े) अवस्थान के रूप में उत्पन्न होने का प्रसंग आता है, वे तिर्यंच कहलाते हैं।

३५१ प्र० इस तिर्यंच गति में कौन कौन जीव आते है ?

उ० नारक, मनुष्य, देव और सिद्धावस्था को प्राप्त आत्माओं के अतिरिक्त जितनी भी संसार में आत्माएं है, वे सब तिर्यंच कहलाती हैं ?

३५२ प्र० क्या सभी तिर्यंच जीव पंचेन्द्रिय हैं ?

उ० नहीं, सभी तिर्यंच जीव पंचेन्द्रिय नहीं हैं ।

३५३ प्र० पंचेन्द्रिय तिर्यंच कौन से कहलाते हैं ?

उ० तिर्यंच गति नाम कर्म के उदय पूर्वक पांचों इन्द्रियां

एक साथ जिन आत्माओं के हैं. वे तिर्यंच पंचेन्द्रिय कहलाते हैं ।

३५४ प्र० अन्य तिर्यंच क्या कहलाते हैं ?

उ० अन्य तिर्यंच गति नाम कर्म के उदय पूर्वक एक साथ रहने वाली द्रव्येन्द्रियों के नाम से पुकारे जाते हैं । जैसे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ।

३५५ प्र० तिर्यंच के कितने भेद है ?

उ० तिर्यंच के ४८ भेद है ।

३५६ प्र० तिर्यंच के ४८ भेद कौन कौन से है ?

उ० पृथ्वी अप, तेऊ और वायु इन चारो के सूक्ष्म और बादर के भेद से ८, इन आठों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से १६ भेद हुए । वनस्पति के सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से छः । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय इनके तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से छः । इस प्रकार सभी मिलाने से २८ और पचेन्द्रिय तिर्यंच के २० भेद जैसे (१) जलचर (२) स्थलचर (३) नभचर (४) उरपरिसर्प और (५) भुज परिसर्प: इन पांचों के सज्ञी (सज्ञी) और असज्ञी इस प्रकार १० और इन दसों के पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार २० इस प्रकार पूर्वोक्त २८ और २० मिलाकर ४८ भेद होते हैं ।

उ० मनुष्य गति कर्म के उदय से पांच इन्द्रिय समन्वित जो मनुष्य अवस्थान के रूप में प्राणि-वर्ग है, वे मनुष्य कहलाते हैं।

३५८ प्र० मनुष्य के कितने भेद हैं और वे कौन कौन से हैं?

उ० मनुष्य के मुख्य निम्न ३०३ भेद हैं—१५ कर्म भूमि, ३० अकर्म भूमि और ५६ अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न होने वाले, इस प्रकार १०१ भेद हुये। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद से २०२ हुये एवं १०१ सम्मूर्च्छिम सब मिला कर ३०३ भेद हुये।

३५९ प्र० ३०३ भेद जो मनुष्य के बताये हैं, क्या वे एक ही स्थान पर पैदा होते है अथवा भिन्न भिन्न स्थानों पर भी पैदा होते हैं ?

उ० वे भिन्न भिन्न स्थानों में पैदा होते हैं क्योंकि— मनुष्य पैदा होने का स्थान अढ़ाई द्वीप (जम्बू द्वीप, धातकी खंड और अर्ध पुष्कर द्वीप) कहलाता है इसी अढाई द्वीप के अन्तर्पटे में भिन्न भिन्न स्थानों में वे पैदा होते है।

३६० प्र० वे भिन्न २ स्थान किन २ नामों से जाने जा सकते है ?

उ० १५ कर्म भूमि=५ भरत, ५ ऐरावत, और ५ महाविदेह। इस प्रकार १५ कर्म भूमिज मनुष्य कहलाते हैं।

३६१ प्र० कर्म भूमि किसको कहते है ?

उ० जिन क्षेत्रों में जन्म लेने वाले मनुष्य उत्कृष्ट पाप करणी तथा उत्कृष्ट धर्म करणी भी कर सकते हों एवं

कृषि, व्यापार, राजकीय व्यवस्था आदि समग्र कार्य जहां यथासम्भव होते हों, वह कर्मभूमि कहलाती है।

३६२ प्र० अकर्म भूमि किसको कहते हैं ?

उ० कर्म सम्बन्धी उपरोक्त कार्य जहां नही होते हों उसको अकर्म भूमि कहते है ।

३६३ प्र० अन्तर्द्वीप किसको कहते है ?

उ० समुद्रों के बीच बीच में जहां द्वीप है, उनको अन्तर्द्वीप कहते है ।

३६४ प्र० सम्मूर्च्छम मनुष्य किसको कहते है ?

उ० मनुष्य शरीर सम्बन्धी विकृत तत्त्वो में जब सडान पैदा होती है तो उनमें गर्भ के बिना भी अपने आप जो जीव पैदा होते है, उन्हे सम्मूर्च्छम मनुष्य कहते है ।

३६५ प्र० सम्मूर्च्छम मनुष्य क्या चर्म-चक्षु से देखे जा सकते है ?

उ० नही, वे चर्मचक्षु से नही देखे जा सकते । उनका केवल आत्मीय दिव्यचक्षु से ही अवलोकन हो सकता है ।

३६६ प्र० अकर्म भूमि के मनुष्यों को किस नाम से पुकारा जाता है ?

उ० स्त्री और पुरुष का युगल (जोडा) पैदा होता है और वही आगे पति पत्नी का रूप ले लिया करता है । कृषि, व्यापार और राज्यादिक व्यवस्था भी वहां नही होती । इस कारण अकर्म भूमि तथा अन्तर्द्वीप के मनुष्यों को युगल नाम से पुकारते है ।

उ० मनुष्य गति कर्म के उदय से पांच इन्द्रिय समन्वित जो मनुष्य अवस्थान के रूप में प्राणि-वर्ग है, वे मनुष्य कहलाते हैं।

३५८ प्र० मनुष्य के कितने भेद हैं और वे कौन कौन से है?

उ० मनुष्य के मुख्य निम्न ३०३ भेद हैं—१५ कर्म भूमि, ३० अकर्म भूमि और ५६ अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न होने वाले, इस प्रकार १०१ भेद हुये। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद से २०२ हुये एवं १०१ सम्मूर्च्छिम सब मिला कर ३०३ भेद हुये।

३५९ प्र० ३०३ भेद जो मनुष्य के बताये है, क्या वे एक ही स्थान पर पैदा होते हैं अथवा भिन्न भिन्न स्थानों पर भी पैदा होते हैं?

उ० वे भिन्न भिन्न स्थानों में पैदा होते हैं क्योंकि—मनुष्य पैदा होने का स्थान अढ़ाई द्वीप (जम्बू द्वीप, धातकी खंड और अर्ध पुष्कर द्वीप) कहलाता है इसी अढ़ाई द्वीप के अन्तर्पटे में भिन्न भिन्न स्थानों मे वे पैदा होते है।

३६० प्र० वे भिन्न २ स्थान किन २ नामों से जाने जा सकते हैं?

उ० १५ कर्म भूमि=५ भरत, ५ ऐरावत, और ५ महाविदेह। इस प्रकार १५ कर्म भूमिज मनुष्य कहलाते है।

३६१ प्र० कर्म भूमि किसको कहते हैं?

उ० जिन क्षेत्रों में जन्म लेने वाले मनुष्य उत्कृष्ट पाप करणी तथा उत्कृष्ट धर्म करणी भी कर सकते हों एवं

कृषि, व्यापार, राजकीय व्यवस्था आदि समग्र कार्य जहां यथासम्भव होते हों, वह कर्मभूमि कहलाती है।

३६२ प्र० अकर्म भूमि किसको कहते है ?

उ० कर्म सम्बन्धी उपरोक्त कार्य जहां नही होते हों उसको अकर्म भूमि कहते है ।

३६३ प्र० अन्तर्द्वीप किसको कहते है ?

उ० समुद्रों के बीच बीच में जहां द्वीप है, उनको अन्तर्द्वीप कहते है ।

३६४ प्र० सम्मूर्च्छम मनुष्य किसको कहते है ?

उ० मनुष्य शरीर सम्बन्धी विकृत तत्त्वों में जब सड़ान पैदा होती है तो उनमे गर्भ के विना भी अपने आप जो जीव पैदा होते है, उन्हे सम्मूर्च्छम मनुष्य कहते है ।

३६५ प्र० सम्मूर्च्छम मनुष्य क्या चर्म-चक्षु से देखे जा सकते है ?

उ० नहीं, वे चर्मचक्षु से नही देखे जा सकते । उनका केवल आत्मीय दिव्यचक्षु से ही अवलोकन हो सकता है ।

३६६ प्र० अकर्म भूमि के मनुष्यो को किस नाम से पुकारा जाता है ?

उ० स्त्री और पुरुष का युगल (जोड़ा) पैदा होता है और वही आगे पति पत्नी का रूप ले लिया करता है । कृषि, व्यापार और राज्यादिक व्यवस्था भी वहां नही होती । इस कारण अकर्म भूमि तथा अन्तर्द्वीप के मनुष्यों को युगल नाम से पुकारते है ।

३६७ प्र० मनुष्य कहां जन्मते और रहते हैं ?

उ० वे तिर्छे लोक के अढ़ाई द्वीप में जन्म लेते और रहते हैं।

३६८ प्र० सम्मूर्च्छम जीव कहां पैदा होते है ?

उ० जहां मनुष्य क्षेत्र है, वही वे पैदा होते हैं।

३६९ प्र० ऊपर कहे गए तिर्च्छे लोक में 'लोक' शब्द आया है, अतः लोक का क्या स्वरूप है ?

उ० जिसमें षट् द्रव्य का परस्पर सापेक्ष अवस्थान हो उसे लोक कहते हैं।

३७० प्र० षट् द्रव्य कौन कौन से है ?

उ० (१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय, (४) जीवास्तिकाय, (५) पुद्गलास्तिकाय एवं (६) काल।

३७१ प्र० काल का स्वरूप क्या है ? उसकी संक्षिप्त जानकारी दीजिये ?

उ० जो पदार्थ के परिवर्तन में सहायक हो, वह काल द्रव्य है। जैसे वस्त्र जीर्ण होता है और जीर्णता से नष्ट होकर पर्यायान्तर होता है, इस जीर्ण, नष्ट, पर्यायान्तर आदि होने के कार्य में जो सहायक हो, उसे काल द्रव्य कहते है।

३७२ प्र० लोक के भेद कितने है और कौन कौन से है ?

उ० लोक के तीन भेद है—(१) अधोलोक (२) तिर्छालोक और (३) ऊर्ध्वलोक।

३७३ प्र० लोक का प्रकार कैसा है ?

उ० प्राचीन काल के नाचते हुए भोपे के आकार जैसा है ।

३७४ प्र० प्राचीन काल का भोपा नाचता हुआ कैसा होता था ?

उ० बहुत सी कलियों का घाघरा पहनकर दोनों हाथ कमर पर रखकर प्राचीन काल का भोपा नाचता था। उस समय घाघरे की कलियां (घेराव) फैल जाती थी और कमर पर हाथ रखने से कोहनियां भी तिर्छी ऊपर उठती हुई रहती थी। इस प्रकार जो आकार बनता है, वह लोक का आकार होता है।

३७५ प्र० लोक कितना बड़ा है ?

उ० लोक १४ राजू का माना गया है ।

३७६ प्र० राजू किसे कहते है ?

उ० एक हजार भार का गोला लेकर इन्द्र अथवा अन्य कोई शक्तिशाली देव उस गोले को जोर से नीचे फेंके, वह गोला छः महीने, छः दिन, छः प्रहर, छः घड़ी और छः पल में जितनी दूर नीचे चला जाय, उतनी दूरी को राजू कहते हैं ।

३७७ प्र० भार किसको कहते है ?

उ० ३, ८१, १२, ९७० (तीन करोड़ इक्यासी लाख बारह हजार नव सौ सत्तर) मन के वजन वाले पदार्थ को भार कहते है ।

३७८ प्र० लोक की मोटाई और चौड़ाई कहां कहां कितनी कितनी है ?

उ० नीचे जड़ से लेकर १४ राजू की ऊंचाई तक, उत्तर और दक्षिण में सात राजू, पूर्व और पश्चिम

[

में भी मूल में तो सात राजू है पर क्रमशः घटते घटते ठीक सात राजू की ऊंचाई पर एक राजू, उसके पश्चात् क्रमशः बढ़ते बढ़ते सवा दस राजू की ऊंचाई पर पांच राजू की चौड़ाई, फिर क्रमशः घटते घटते चौदह राजू की ऊंचाई पर एक राजू रह जाता है।

३७९ प्र० देव किसको कहते है ?

उ० देव गति नाम कर्म के उदय से वैक्रिय पुद्गलों से निर्मित दिव्य शरीर जिन आत्माओं को प्राप्त हो, उन आत्माओं को देव कहते है।

३८० प्र० देव कितने और कौन कौन से है ?

उ० देवों को मुख्यतः चार भागों में बांटा जा सकता है (१) भवनपति (२) वाणव्यन्तर (३) ज्योतिषी और (४) वैमानिक।

३८१ प्र० भवनपति किन देवों को कहते हैं ?

उ० जो देव भवनों के अन्दर निवास करते है, उन्हें भवनपति कहते हैं ?

३८२ प्र० ये भवन कहां है ?

उ० ये भवन अधोलोक में है।

३८३ प्र० भवनपति देवों के कितने भेद है ?

उ० भवनपति देवों के कई भेद हैं परन्तु यहां मुख्यतः २५ भेद जान लेना आवश्यक है।

३८४ प्र० वे २५ भेद कौन से है ?

उ० भवन पति देवों के २५ भेद इस प्रकार है :—

दस भवन पति और पन्द्रह परमाधार्मिक मिलकर पच्चीस होते है।
भवनपति देवों के १० भेद—(१) असुरकुमार (२) नागकुमार (३) सुवर्णकुमार (४) विद्युत्-कुमार (५) अग्निकुमार (६) द्वीपकुमार (७) उदधिकुमार (८) दिशाकुमार (६) वायुकुमार (पवनकुमार) (१०) थणित (स्तनित कुमार)
परमाधार्मिक देवों के पन्द्रह भेद—(१) अम्ब (अम्बे)—नारकी के जीवों को मारपीट करते, गिराते, बांधकर आकाश में उछालते है, (२) अम्बरिपी (अम्बरिषी) नारकी के जीवों को कतरनी से कतर कतर कर भूनने योग्य बनाते है, (३) श्याम (सामे) रस्सी, हाथ (हस्त) पैर, आदि के प्रहार से नरक के जीवों को बहुत सताते है, (४) शवल (सबले) नरक के जीवों के शरीर के आन्तरिक अवयवों को निकालने की दृष्टि से खीचते है, (५) रौद्र (रूद्दे) नारकी के जीवों को बर्च्छी, छुरा, भाला आदि शस्त्रों से वेदना देते है उन्हे पिरोते है, (६) महारौद्र (महारूद्दे) नारकी के जीवों के अवयव छेदन भेदन करते है, (७) काल (काले) नारकी के जीवों को उकलती हुई कढाई में पकाते है, (८) महाकाल (महाकाले) नारकी के जीवो के शरीर के भाग को काटकर मांस सदृश दिखाकर उन्हीं को खिलाते है, (६) असिपत्र (असिपत्ते) वैक्रिय शरीर से तलवार जैसे तीक्ष्ण पत्तों वाले बड़े बड़े वृक्ष बना कर उनके नीचे नारकी जीवों को बैठा कर, वृक्षों को हिला-

कर जो तीक्ष्ण पत्र नीचे गिरते हैं उनसे छेदन, भेदन करते है, (१०) धनुष (धणु) वैक्रिय शक्ति से बाण बना कर उनसे तीक्ष्ण प्रहार करते है, (११) कुम्भ (कुंभ) कुम्भादिक भट्टियों में डाल-कर नारकी के जीवों को कष्ट पहुंचाते है, (१२) वालुक -वैक्रिय शक्ति से अत्यधिक संतप्त रेती का निर्माण कर नारकी के जीवों को कष्ट देते है-संतप्त करते है, (१३) वैतरणी (वेयरणी) वैक्रिय शक्ति से वैक्रिय नदी तैयार कर, अत्यन्त असह्य दुर्गन्ध युक्त पीप, रुधिर समान पदार्थ तथा अत्य-धिक उकलते हुये तांबे, कथीर, सीसा, जस्ता आदि विविध पदार्थों के घोल से उस नदी को भरते है और उसमें नारकी के जीवों को डुबा डुबा कर बार बार कष्ट देते हैं, (१४) खरस्वर (खर-स्सरे)-वज्र जैसे कठिन अत्यधिक तीक्ष्ण कांटे वाले शालमली वृक्षों पर नारकी के जीवों को चढ़ा कर वेदना से बुरी तरह चिल्लाते हुये नारकी जीवों को खीचते है, और (१५) महाघोष (महा-घोसे) अनेक तरह की वेदना से भागते हुए नारकी जीवो को अति भयंकर शब्द कर, स्थान विशेष पर रोकते है और फिर कष्ट देते है। ये पन्द्रह जाति के देवता अति क्रूर, मलिन परिणामी होने से परमाधार्मिक (परम अधार्मिक) कहलाते है।

३८५ प्र० वाणव्यन्तर देव कौन कहलाते है ?

उ० जिन देवो मे कौतूहल, खेल कूद आदि की अवस्था अपेक्षाकृत अधिक होती है, वे वाणव्यन्तर देव कहलाते है।

३८६ प्र० वाण व्यन्तर देवों के कितने और कौन कौन से भेद हैं ?

उ० वाण व्यन्तर देवों के २६ भेद हैं (१) पिशाच, (२) भूत, (३) जक्ष (यक्ष), (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किम्पुरुष, (७) महोरग, (८) गन्धर्व, (९) आणपण्णी, (१०) पाणपण्णी, (११) इसिवाई, (ऋषिवादी), (१२) भूयवाई (भूतवादी), (१३) कन्दिय, (१४) महाकन्दिय, (१५) कोहड (कुष्माण्ड), (१६) पयंगदेव (प्रेतदेव) और दस जृम्भक देवों के नाम (१) अन्न जृम्भक, (२) पान जृम्भक, (३) लयन जृम्भक, (४) शयन जृम्भक, (५) वस्त्र जृम्भक, (६) फलजृम्भक, (७) पुष्प जृम्भक, (८) फल पुष्प जृम्भक, (९) विज्जु जृम्भक और (१०) अग्नि जृम्भक।

३८७ प्र० व्यन्तरों में ये दस देव जृम्भक क्यों कहलाते है ?

उ० ये विशेष क्रीडा स्वभाव में मग्न रहने के कारण जृम्भक नाम से पुकारे जाते है ।

३८८ प्र० ज्योतिषी देव किनको कहते है ?

उ० ज्योतिष मण्डल के अन्तर्गत रहने वाले देवों को ज्योतिषी देव कहते है ।

३८९ प्र० ज्योतिषी देवों के कितने और कौन २ से भेद हैं ?

उ० ज्योतिषी देवों के मुख्य दस भेद है (१) चन्द्र (२) सूर्य (३) ग्रह (४) नक्षत्र (५) तारा ये पांच ज्योतिषी देव मनुष्य क्षेत्र में अस्थिर माने जाते है और इसी प्रकार के नाम वाले पांच

ज्योतिषी देव जो मनुष्य क्षेत्र से बाहर हैं, स्थिर (अचल) माने जाते हैं। इस प्रकार पांच स्थिर और अस्थिर कुल मिला कर दस होते हैं।

३६० प्र० वैमानिक देव किसे कहते हैं ?

उ० जिन देवों का अवस्थान विमानों में हो, उन्हें वैमानिक देव कहते हैं।

३६१ प्र० वैमानिक देवों के कितने और कौन २ से भेद हैं?

उ० वैमानिक देवों के मुख्य दो भेद हैं (१) कल्पोपपन्न और (२) कल्पातीत।

३६२ प्र० कल्पोपन्न किसे कहते हैं ?

उ० कल्प यानी मर्यादा—जैसे राजकीय शासन में मर्यादा, व्यवस्था होती है और उस शासन में रहने वालों को उस मर्यादा का पालन करना पड़ता है, वैसे ही जिन विमानों में इन्द्र के साथ सामानिक त्रायस्त्रिश लोकपाल आदि देव वर्गों की व्यवस्था हो, परिषह हो, छोटे बड़े की स्थिति की मर्यादा आदि हो, उन्हें कल्पोपपन्न देव कहते हैं।

३६३ प्र० कल्पातीत देव किसको कहते हैं ?

उ० जिन देवों में सामानिक आदि छोटे बड़ों का भेद न हो, सभी अहमिन्द्र (अहम्+इन्द्र) हों, उन्हें कल्पातीत कहते हैं।

३६४ प्र० कल्पोपपन्न देवों के कितने और कौन कौन से विभाग हैं ?

उ० सामान्यरूप से कल्पोपपन्न देवों के १२ विभाग हैं-जिन्हें बारह देवलोक भी कह सकते हैं, जिनके

नाम ये हैं (१) सौधर्म, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) महेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक, (६) लान्तक, (७) शुक्र, (८) सहस्रार, (९) आणत, (१०) प्राणत, (११) आरण और (१२) अच्युत ।

३९५ प्र० कल्पोपपन्न देवों के १२ भेद सामान्य रूप से बताये गये हैं तो क्या इनके विशेष भेद भी हैं ?

उ० हां है-विशेष भेदों में तीन किल्विषिक और नौ लौकान्तिक भी हैं ।

३९६ प्र० तीन किल्विषिक कहां रहते हैं ?

उ० (१) त्रिपल्योपमिक-जो पहले दूसरे देवलोक के नीचे रहते है । (२) त्रैसागरिक-जो तीसरे चौथे देवलोक के नीचे रहते हैं । (३) त्रयोदशसागरिक-जो छठे देवलोक के नीचे रहते है । स्थिति के अनुसार ही इनके नाम हैं ।

३९७ प्र० क्या किल्विषिक के सिवाय और भी विशेष भेद हैं ?

उ० हां, नौ लोकान्तिक भी हैं ।

३९८ प्र० लोकान्तिक के नाम क्या है ?

उ० (१) सारस्वत (२) आदित्य (३) वह्नि (४) वरुण (५) गर्दतोय (६) तुषित (७) अव्याबाध (८) आग्नेय और (९) अरिष्ट ।

३९९ प्र० कल्पातीत के कितने विभाग है ?

उ० कल्पातीत के सामान्य दो विभाग है (१) ग्रैवयक और (२) अनुत्तर वैमानिक ।

४०० प्र० ग्रैवयक के कितने भेद हैं ?

उ० ग्रैवयक के नौ भेद हैं।

४०१ प्र० ग्रैवयक के ९ विभाग किस २ नाम से पुकारे जाते हैं ?

उ० (१) अधस्तनाधस्तन, (२) अधस्तन मध्यम, (३) अधस्तनो परितन, (४) मध्यमाधस्तन, (५) मध्यम-मध्यम, (६) मध्यमोपरितन, (७) उपरितनाधस्तन, (८) उपरितनमध्यम, और (९) उपरितनोपरितन।

४०२ प्र० अनुत्तर वैमानिक देव के कितने विभाग हैं ?

उ० अनुत्तर वैमानिक देव के पांच विभाग हैं।

४०३ प्र० अनुत्तर वैमानिक देव के पांच विभागों के क्या नाम हैं ?

उ० (१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध।

४०४ प्र० देवों के कुल भेद कितने होते हैं ?

उ० उपरोक्त प्रकार से भवनपति आदि के कुल मिला कर ९९ भेद हैं और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार सब मिला कर १९८ भेद होते हैं।

४०५ प्र० पर्याप्त जीव और अपर्याप्त जीव का क्या तात्पर्य है?

उ० जो जीव अपने बांधने योग्य पर्याप्ति पूरी बांध ले, वह पर्याप्त जीव कहलाता है और जो अपने बांधने योग्य पर्याप्ति पूरी नहीं बांधे, वह अपर्याप्त कहलाता है।

४०६ प्र० पर्याप्ति किसको कहते हैं ?

उ० उत्पत्ति स्थान पर आया हुआ जीव जिस शक्ति की पूर्णता के बल से शरीरादिक के योग्य पुद्गल ग्रहण कर गृहीत पुद्गलों को आहारादिक के रूप में परिणमन करता है, उस शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं ।

४०७ प्र० पर्याप्ति के कितने भेद हैं ?

उ० पर्याप्ति के छः भेद है (१) आहार पर्याप्ति, (२) शरीर पर्याप्ति, (३) इन्द्रिय पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, (५) भाषा पर्याप्ति, और (६) मन पर्याप्ति ।

४०८ प्र० आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ० जिस आत्मीय शक्ति विशेष की पूर्णता से जीव आहार वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर खल भाग एवं रस भाग मे परिणमन करे, उस शक्ति विशेष को आहार पर्याप्ति कहते है ।

४०९ प्र० शरीर पर्याप्ति किसे कहते है ?

उ० आहार पर्याप्ति द्वारा निर्मित पुद्गलों को शरीर पिण्ड की रचना के रूप में परिणति जिस आत्मीय शक्ति विशेष की पूर्णता से होती है, उस शक्ति विशेप को शरीर पर्याप्ति कहते है ।

४१० प्र० इन्द्रिय पर्याप्ति किसको कहते है ?

उ० शरीर पिण्ड रचना में निर्मित पुद्गलों में से स्पर्शन आदि इन्द्रियों के रूप में परिणति जिस आत्मीय शक्ति विशेष की पूर्णता से हो, वह शक्ति

विशेष इन्द्रिय पर्याप्ति कहलाती है ।

४११ प्र० श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसको कहते हैं ?

उ० आहारादि पूर्व पर्याप्तियों में निर्मित पुद्गलों में से यथायोग्य श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया के अवस्थान की परिणति जिस आत्मीय शक्ति विशेष की पूर्णता से होती है, उस शक्ति विशेष को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं ।

४१२ प्र० भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ० भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर भाषा रूप में परिणत करके छोड़ने की योग्यता का निर्माण जिस आत्मीय शक्ति विशेष की पूर्णता से हो, वह शक्ति विशेष भाषा पर्याप्ति कहलाती है ।

४१३ प्र० मन पर्याप्ति किसको कहते हैं ?

उ० मन वर्गणा के परमाणुओं को संकल्प-विकल्प के साधन रूप द्रव्य मन के रूप में परिणमन करने की आत्मीय शक्ति विशेष की पूर्णता को मन पर्याप्ति कहते है ।

४१४ प्र० एकेन्द्रिय जाति में कितनी पर्याप्तियां पाई जाती हैं?

उ० भाषा और मन को छोड़ कर शेष चार पर्याप्तियां एकेन्द्रिय जाति मे पाई जाती हैं ।

४१५ प्र० द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति के जीवों में कितनी पर्याप्तियां पाई जाती हैं ?

उ० द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति के जीवों में मन को छोड़ कर शेप पांच पर्याप्तियां पाई

जाती हैं।

४१६ प्र० पंचेन्द्रिय जाति के जीवों में कितनी पर्याप्तियां पाई जाती हैं ?

उ० असन्नी पंचेन्द्रिय जाति के जीवों में मन को छोड़ कर शेष पांच एवं सन्नी पंचेन्द्रिय जाति के सभी जीवों में छहों पर्याप्तियां पाई जाती हैं।

४१७ प्र० ये पर्याप्तियां कितने काल में बंधती है ?

उ० ये पर्याप्तियां अन्तर्मुहूर्त काल में बंधती हैं।

४१८ प्र० एक २ पर्याप्ति के बंधने में कितना काल लगता है ?

उ० एक एक पर्याप्ति के बंधने में भी अन्तर्मुहूर्त काल लगता है।

४१९ प्र० एक एक पर्याप्ति के बंधने में अन्तर्मुहूर्त का काल लगता है और सभी पर्याप्तियों के लिये भी अन्तर्मुहूर्त का काल लगता है, यह किस प्रकार संभव है?

उ० अन्तर्मुहूर्त काल के कई भेद होते है। प्रथम पर्याप्ति के अन्तर्मुहूर्त की अपेक्षा दूसरी पर्याप्ति का अन्तर्मुहूर्त अपेक्षाकृत बड़ा होता है। वैसे ही क्रमशः छठी पर्याप्ति पूर्ण होते तक अन्तर्मुहूर्त बड़ा होता है।

४२० प्र० सभी पर्याप्तियों का प्रारम्भ एक साथ होता है अथवा एक के बाद दूसरी का क्रमशः प्रारम्भ होता है ?

उ० प्रारम्भ तो अपने अपने योग्य सब पर्याप्तियों का प्रथम अन्तर्मुहूर्त में ही होता है परन्तु पूर्णता क्रमिक रूप से अगले अगले अन्तर्मुहूर्त में होती है।

४२१ प्र० पर्याप्तियों की अपेक्षा से जीवों के कितने भेद होते हैं?
उ० पर्याप्तियों की अपेक्षा से जीवों के अपर्याप्त और पर्याप्त ऐसे दो भेद होते हैं।

४२२ प्र० अपर्याप्त के कितने भेद होते हैं ?
उ० अपर्याप्त के दो भेद होते है। (१) लब्धि अपर्याप्त (२) करण अपर्याप्त।

४२३ प्र० लब्धि अपर्याप्त किसे कहते है ?
उ० जो जीव, अपर्याप्त नामकर्म के उदय के कारण ऐसी शक्ति वाले हों, जिससे कि स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किये बिना ही मर जाते हैं, वे "लब्धि अपर्याप्त" कहलाते हैं।

४२४ प्र० करण अपर्याप्त किसे कहते हैं ?
उ० पर्याप्त नामकर्म का उदय हो या अपर्याप्त नामकर्म का, परन्तु जब तक करणों की (शरीर, इन्द्रिय आदि पर्याप्तियों की) समाप्ति न हो, तब तक जीव "करण अपर्याप्त" कहे जाते हैं।

४२५ प्र० पर्याप्त जीवों के कितने भेद है ?
उ० पर्याप्त जीवों के दो भेद हैं। (१) लब्धि पर्याप्त (२) करण पर्याप्त।

४२६ प्र० लब्धि पर्याप्त किसे कहते हैं ?
उ० जिनको पर्याप्त नामकर्म का उदय हो और इससे जो स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने के बाद ही मरते हैं इससे पहले नहीं, वे "लब्धि पर्याप्त" हैं।

४२७ प्र० करण पर्याप्त किसे कहते है ?
उ० करण-पर्याप्तों के लिये यह नियम नहीं कि वे स्व-

ख्यातवें भाग तक छोटा हो सकता है।

४३१ प्र० बड़े से बड़ा कब होता है ?

उ० केवली समुद्घात के समय बड़े से बड़ा लोक प्रमाण बनता है।

४३२ प्र० केवली समुद्घात किसे कहते है ?

उ० लोक प्रमाण आत्मप्रदेशों को फैलाकर आयुष्य कर्म के बराबर अन्य तीन कर्मो की स्थिति बना देने सम्बन्धी प्रक्रिया विशेष को केवली समुद्घात कहते हैं।

४३३ प्र० यह विशेष प्रक्रिया कौन सी आत्माएं करती है ? क्या सभी केवलज्ञानी केवली समुद्घात करते हैं ?

उ० नहीं। सभी केवलज्ञानी, केवली समुद्घात नहीं करते किन्तु जिन केवल ज्ञानियों के वेदनीय कर्म तथा नाम और गोत्र कर्म की स्थिति आयुष्य कर्म की अपेक्षा अधिक हो और केवली समुद्घात के बिना वे आयुष्य कर्म के बराबर नही बन सकते, वे केवली भगवान् केवली समुद्घात करते है।

४३४ प्र० केवलज्ञानी किस विधि से केवली समुद्घात करते है?

उ० केवली समुद्घात करने के पहले वे सर्वज्ञ प्रभु अन्तर्मुहूर्त तक आवर्जीकरण करते हैं। फिर समुद्घात की विशेष प्रक्रिया प्रारम्भ करते है, उसमे आठ समय लगते हैं।

(१) प्रथम समय में शरीर प्रमाण आत्मप्रदेशोंमय एक दण्ड निकालकर इस चतुर्दश रज्वात्मक लोक के ऊपर के अन्तिम (छोले) किनारे से लेकर

]

अधोलोक के अन्तिम (छोले) किनारे तक फैला देते है ।

(२) दूसरे समय में पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण के अन्तिम आकाश को छूने वाले आत्मप्रदेशों का कपाट करते हैं ।

(३) तीसरे समय मे चारों विदिशाओं में मन्थान करते है अर्थात् विदिशाओं में आत्मप्रदेशों को फैलाते है ।

(४) चतुर्थ समय मे दिशाओं तथा विदिशाओं के आन्तरों को आत्मप्रदेशों से पूर्णकर अर्थात् आत्म-प्रदेशों को प्रत्येक लोकाकाश प्रदेश तक व्याप्त कर देते हैं और उसी चतुर्थ समय में अधिक स्थिति वाले कर्मो को आयुष्य कर्म की स्थिति के समान कर देते है ।

(५) पंचम समय मे दिशाओं और विदिशाओं के वीच में व्याप्त आत्मप्रदेशों को मन्थान में समेटते है ।

(६) षष्ठ समय में मन्थान के आत्मप्रदेशों को कपाट में ले लेते है ।

(७) सप्तम समय मे कपाट रूप के आत्मप्रदेशों को दण्डात्मक आत्मप्रदेशों मे समाहित कर देते हैं।

(८) अष्टम समय में दण्डात्मक आत्मप्रदेशों को भी शरीर प्रमाण मे कर लिया जाता है ।

४३५ प्र० आवर्जीकरण किसको कहते है ?

उ० अत्यन्त शुभतम योगों के व्यापार को ।व

कहते हैं। यह आवर्जीकरण प्रत्येक मोक्षगामी जीव को मोक्ष के पूर्व अत्यन्त उच्च अवस्था मे करना पड़ता है।

४३६ प्र० आवर्जीकरण का समय कितना होता है ?

उ० एक अन्तर्मुहूर्त काल का समय होता है।

४३७ प्र० आत्मप्रदेश किसको कहते है ?

उ० आत्मा के अविभाज्य प्रदेशों के समूह का एक प्रदेश जिसके बौद्धिक दृष्टि से भी दो विभाग न हो सके, उसे आत्मप्रदेश कहते हैं।

४३८ प्र० क्या आत्मप्रदेश आत्मा से पृथक् हो सकते हैं ?

उ० नही ! तीनो काल में कभी भी आत्मप्रदेश आत्मा से पृथक् नही हो सकते परन्तु प्रदीप के प्रकाश की तरह सकोच या विकास मोक्ष के पूर्व होता रहता है।

४३९ प्र० किस किस द्रव्य के प्रदेश आत्मप्रदेशों की तरह होते है ?

उ० धर्मास्तिकाय व अधर्मास्तिकाय के प्रदेश भी प्रदेशत्व की दृष्टि से जीवास्तिकाय के प्रदेशों के तुल्य होते है।

४४० प्र० आकाशास्तिकाय के प्रदेश कैसे होते हैं ?

उ० धर्मास्तिकाय के प्रदेश की तरह ही आकाशास्तिकाय के प्रदेश होते है। वे लोकाकाश में तो धर्मास्तिकाय के प्रदेशों की संख्या के तुल्य होते है और अलोकाकाश में अनन्त होते हे।

४४१ प्र० क्या इनमें विशेष गुणों की दृष्टि से भी समानता रहती है ?

की सामान्य शक्ति को गुण और क्रम और व्युत्क्रम से रूपान्तर होने वाली, सर्वदा साथ रहने वाली आत्मप्रदेशों की शक्ति को पर्याय संज्ञा दी जाती है। दोनों में यही भेद है।

४४७ प्र० पर्याय के कितने भेद है?

उ० पर्याय के मुख्य दो भेद हैं (१) व्यञ्जन पर्याय और (२) अर्थ पर्याय।

४४८ प्र० व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं?

उ० द्रव्य की प्रदेशत्वशक्ति के विपरिणमन को व्यंजन पर्याय कहते हैं।

४४९ प्र० व्यंजन पर्याय के कितने भेद हैं?

उ० व्यंजन पर्याय के दो मुख्य भेद है (१) स्वभाव व्यंजन पर्याय और (२) विभाव व्यंजन पर्याय।

४५० प्र० स्वभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं?

उ० अन्य निमित्त के बिना स्वद्रव्य के प्रदेशत्व का स्व अवस्था में विपरिणमन होने को स्वभाव व्यंजन पर्याय कहते है। जैसे परम्परा (प्रथम समय से भिन्न) सिद्ध के प्रदेशत्व शक्ति का अवस्थान।

४५१ प्र० स्वभाव व्यंजन पर्याय में सिद्ध पर्याय न कहकर परम्परा सिद्ध पर्याय क्यों कहा गया?

उ० प्रथम समय की सिद्ध पर्याय में चतुर्दश गुण स्थान-वर्ती शरीर की अवगाहना की निमित्तता रहती है अतः अनन्तर (प्रथम समय) की सिद्ध पर्याय का उदाहरण नही बनता। इसलिए परम्परा सिद्ध पर्याय कहा गया है।

४५२ प्र० विभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?
उ० पर की निमित्तता से व्यञ्जन पर्याय हो, उसे विभाव व्यंजन पर्याय कहते है ।

४५३ प्र० विभाव व्यंजन पर्याय के कितने भेद हैं ?
उ० विभाव व्यंजन पर्याय के भी मुख्य दो भेद हैं (१) शुभ विभाव व्यंजन पर्याय और (२) अशुभ विभाव व्यजन पर्याय ।

४५४ प्र० शुभ विभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते है ?
उ० आत्मीय स्वरूपाभिमुखी अवस्था के अन्तर्गत होने वाले प्रदेशत्व शक्ति में न्यूनाधिक परिणमन को शुभ विभाव व्यंजन पर्याय कहते है ।

४५५ प्र० शुभ विभाव व्यंजन पर्याय के कितने भेद हैं ?
उ० शुभ विभाव व्यंजन पर्याय के प्रमुख दो भेद हैं (१) शुद्ध विभाव व्यंजन पर्याय और (२) परम विशुद्ध विभाव व्यंजन पर्याय ।

४५६ प्र० शुद्ध विभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?
उ० किसी भी शुभ प्रयोजन आदि वशवर्ती आत्मा-प्रदेशों का विकास संकोच आदि में विपरिणमन अवस्थान होना, जैसे सम्यग्दृष्टि जीव से लेकर चतुर्दश गुणस्थान पर्यंत आत्मप्रदेशों का यथायोग्य विपरिणमन शुद्ध विभाव व्यंजन पर्याय कहलाता है ।

४५७ प्र० परम विशुद्ध विभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते है?
उ० पर निमित्त के अन्तिम व्यापार से आत्मप्रदेशों का जो अन्तिम अवस्थान विपरिणमन होता है उसे परम विशुद्ध विभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं । जैसे

चतुर्दश गुणस्थान की अन्तिम अवस्था से प्रथम समय की सिद्ध पर्याय।

४५८ प्र० अशुभ विभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?
उ० आत्मीय स्वरूप की विमुखी दशा के अन्तर्गत होने वाले आत्मप्रदेशों की विकृत विपरिणमन अवस्थान को अशुभ विभाव व्यंजन पर्याय कहते है।

४५९ प्र० अशुभ विभाव व्यंजन पर्याय के कितने भेद है ?
उ० तारतम्यता की दृष्टि से इसके भी अनेक भेद हैं। जैसे सम्यग् दृष्टि से भिन्न जीव की नरकादि पर्याय।

४६० प्र० अर्थ पर्याय किसे कहते है ?
उ० प्रदेशत्व शक्ति के विपरिणमन अवस्थान से भिन्न समस्त शक्तियों के विपरिणमन अवस्थान को अर्थ पर्याय कहते है।

४६१ प्र० अर्थ पर्याय के कितने भेद है ?
उ० अर्थ पर्याय के प्रमुख दो भेद है (१) स्वभाव अर्थ पर्याय और (२) विभाव अर्थ पर्याय।

४६२ प्र० स्वभाव अर्थ पर्याय किसको कहते है ?
उ० पर द्रव्य के निमित्त विना स्वतः विपरिणमन अवस्थान को स्वभाव अर्थ पर्याय कहते हैं। जैसे कि केवलज्ञान के प्रथम समय के पश्चात् होने वाला विपरिणमन।

४६३ प्र० विभाव अर्थ पर्याय किसको कहते है ?
उ० पर द्रव्य के निमित्त से होने वाले विपरिणमन अवस्थान को विभाव अर्थ पर्याय कहते है।

४६४ प्र० विभाव अर्थ पर्याय के कितने भेद है ?

उ० विभाव अर्थ पर्याय के भी मुख्य दो भेद हैं (१) शुभ विभाव अर्थ पर्याय और (२) अशुभ विभाव अर्थ पर्याय।

४६५ प्र० शुभ विभाव अर्थ पर्याय किसको कहते हैं ?

उ० पर द्रव्य के निमित्त से प्रदेशत्व शक्ति के अतिरिक्त समस्त आत्मीय शक्तियों का स्वाभिमुख लक्ष्यपूर्वक विपरिणमन अवस्थान को शुभ विभाव अर्थ पर्याय कहते हैं।

४६६ प्र० शुभ विभाव अर्थ पर्याय के कितने भेद हैं ?

उ० शुभ विभाव अर्थ पर्याय के प्रमुख रूप से दो भेद हैं (१) शुद्ध और (२) परम शुद्ध।

४६७ प्र० शुद्ध विभाव अर्थ पर्याय किसको कहते हैं ?

उ० उपरोक्त विभाव अर्थ पर्याय के अर्थ के अन्तर्गत शुद्ध आत्मीय लक्ष्य की अवस्था में विभिन्न तरीके से यथायोग्य आत्मीय शक्तियों के विपरिणमन को शुद्ध विभाव अर्थ पर्याय कहते है। जैसे कि सम्यग् दृष्टि की स्थिति से लेकर दशम गुणस्थान पर्यन्त।

४६८ प्र० परम विशुद्ध विभाव अर्थ पर्याय किसको कहते है ?

उ० उपरोक्त विभाव अर्थ पर्याय के अर्थ के अन्तर्गत वीतराग अवस्था की स्थिति में विपरिणमन को परम विशुद्ध विभाव अर्थ पर्याय कहते हैं। जैसे एकादश गुणस्थान की अवस्था से लेकर प्रथम समय की सिद्ध पर्याय पर्यन्त।

४६९ प्र० अशुभ विभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

उ० भौतिक लक्ष्य के अन्तर्गत प्रदेशत्व शक्ति के अति-

रिक्त समग्र आत्मीय शक्तियों के विपरिणमन अव-
स्थान को अशुभ विभाव अर्थ पर्याय कहते हैं।

४७० प्र० अशुभ विभाव अर्थ पर्याय के कितने भेद हैं?
उ० इसके अनेक भेद हैं। अधिकांश सांसारिक प्राणियों
में यथासम्भव अशुभ विभाव अर्थ पर्याय समझना
चाहिए।

४७१ प्र० द्रव्य (वस्तु) के समग्र स्वरूप को किसके माध्यम
से सही रूप से समझा जा सकता है?
उ० सही लक्षण और निक्षेप तथा नय प्रमाण के माध्यम
से वस्तु के समग्र स्वरूप को सही रूप से समझा
जा सकता है।

४७२ प्र० सही लक्षण किसको कहते हैं?
उ० वस्तु के असाधारण स्वभाव रूप समस्त धर्मों को
सम्यग् रूप से बतानेवाला वस्तु का सही लक्षण
कहलाता है। जैसे—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य
उपयोग आदि जीव का लक्षण है।
(उ० सूत्र अ० २८/११)
नाणं च दंसणं चेव चरितं य तवो तहा।
वीरियं उवओगो य एदं जीअस्स लक्खणं॥

४७३ प्र० लक्षण के कितने भेद हैं?
उ० मुख्यतः दो भेद हैं (१) स्वस्वरूप प्रधान (२)
संयोग प्रधान।

४७४ प्र० स्वस्वरूप प्रधान किसको कहते हैं?
उ० जिस लक्षण से वस्तु का स्वभाव मुख्य रूप से अव-
गत हो, वह स्व स्वरूप प्रधान लक्षण कहलाता है।

जैसे जीव के उपरोक्त लक्षण।

४७५ प्र० संयोग प्रधान लक्षण किसको कहते हैं ?

फुटनोट:—अन्न उत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति जाव परूवेति एवं खलु पाणातिवाए मुसावाए जाव मिच्छादंसणतल्ले वट्टमाणस्स अन्ने जीवो अन्ने जीवाया पाणाइवायवेरमणे जाव परिग्गहवेरमणे कोह विवेगे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे वट्टमाणस्स अन्ने जीवे अन्ने जीवाया उप्पत्तियाए जाव परिणामियाए वट्टमाणस्स अन्ने जीवे अन्ने जीवाया उप्पत्तियाए उग्गहे ईहा अवाए धारणाएय वट्टमाणस्स जाव जीवाया उट्ठाणे जाव परक्कमे वट्टमाणस्स जाव जीवाया नेरइयत्ते तिरक्ख मणुस्स देवत्ते वट्टमाणस्स जाव जीवाया नाणावरणिज्जे जाव अंतराइए वट्टमाणस्स जाव जीवाया, एवं कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए सम्माद्दिट्ठीए ३ एवं चक्खुदंसणे ४ आभिणिवोहियनाणे ५ मति अन्नाणे ३ आहारसन्नए ४ एवं ओरालियसरीरे ५ एवं मणजोए ३ सागारोवओगे अणागारोवओगे वट्टमाणस्स अन्ने जीवे अन्ने जीवाया, से कहमेयं भंते ! एवं गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खति जाव मिच्छ ते एवमाहसु अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि एवं खलु पाणातिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले वट्टमाणस्स सच्चेव जीवे सच्चेव जीवाया जाव अणागारोवओगे वट्टमाणस्स जावसच्चेव जीवाया (सूत्र भगवती १७/२/५९६) आया भंते! काया अन्ने विकाया? गोयमा! आया वि काए अन्ने विकाए रूवी भते ! काए अरूवी काए ? गोयमा रूवी पिकाए अरूवी पिकाए। भगवती १३/७/४९५

उ० संयोग की मुख्यता से वस्तु को जाना जाय, उसे संयोग प्रधान लक्षण कहते हैं। जैसे रूपी जीव का अवबोध।

४७६ प्र० रूपी जीव किसको कहते हैं?

उ० तेजस कार्माण शरीर और काया आदि योग सहित जीव को रूपी जीव कहते हैं।

४७७ प्र० लक्षणाभास किसको हैं?

उ० जो लक्षण जिस अवस्था का किया जाय, वह उस अवस्था की समग्र स्थिति का अवबोधक न होकर न्यूनाधिक स्वरूप का अवबोधक हो, उस लक्षण को लक्षणाभास कहते हैं।

४७८ प्र० लक्षणाभास के कितने भेद हैं?

उ० लक्षणाभास के मुख्यतः तीन भेद दर्शनिक क्षेत्र में किये गये हैं।

४७९ प्र० वे तीन भेद कौन कौन से हैं?

उ० (१) अव्याप्ति, (२) अतिव्याप्ति और (३) असंभव

४८० प्र० अव्याप्ति किसे कहते हैं?

उ० लक्ष्य के एक देश में लक्षण के रहने को अव्याप्ति कहते हैं, जैसे गौ का लक्षण शवलत्व अथवा जीव का लक्षण पञ्चेन्द्रियत्व।

४८१ प्र० अतिव्याप्ति किसे कहते हैं?

उ० लक्षण का लक्ष्य और अलक्ष्य दोनों में रहना अति व्याप्ति दोष कहलाता है, जैसे गौ का लक्षण सींग।

४८२ प्र० असम्भव किसे कहते हैं?

उ० लक्ष्य में लक्षण के सम्भव न होने को असम्भव कहते

आकृति है ?

उ० नहीं !

४६१ प्र० भगवान् महावीर की फोटो या प्रतिमा (मूर्ति) को क्या भगवान् महावीर की आकृति या स्थापना-निक्षेप कह सकते हैं ?

उ० भगवान् महावीर की फोटो को या मूर्ति को सच्ची स्थापना-निक्षेप नहीं कह सकते क्योंकि फोटो की आकृति फोटो नाम का स्थापना-निक्षेप और मूर्ति की आकृति मूर्त्ति नाम का मूर्ति स्थापना निक्षेप है। वह भी असत् है, सत् नहीं।

४६२ प्र० तीर्थंकरों की मूर्तियों के लिये कोई लोग कहते हैं कि यह तीर्थंकर भगवान् का स्थापना-निक्षेप है, यह कहां तक ठीक है ?

उ० लोग प्रायः भद्रिक स्वभावी होते है। वे स्वयं गहराई से बहुत कम सोच पाते हैं। उन्हें जैसा कह दिया जाता है वैसा ही वे भी कह देते हैं। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि जिस समय जिस पिण्ड को जिस नाम से पुकारा जाता है, उस समय की उसी पिण्ड की आकृति को ही सच्चा स्थापना-निक्षेप कहते है। उस पिण्ड से भिन्न चाहे उसी का सही फोटो हो अथवा उसी पिण्ड की हूबहू मूर्ति हो, वे उस असली पिण्ड से सर्वथा भिन्न होते हैं। इसीलिए उसे फोटो या मूर्ति कहा जाता है। जिस पिण्ड का नाम, फोटो या मूर्ति है, उसी फोटो की आकृति फोटो नाम का स्थापना-निक्षेप है और मूर्ति की आकृति को मूर्ति नाम का स्थापना-निक्षेप

कहते हैं, तीर्थंकरों का नहीं। तीर्थंकरों का स्थापना-
निक्षेप तो तीर्थंकर को केवल ज्ञान होने के बाद से
लेकर मोक्ष नहीं जाने के पहले तक तीर्थंकर नाम
के धारे जाने वाले पिण्ड की आकृति तीर्थंकर
नाम का स्थापना-निक्षेप होता है। इसके पहले या
बाद की आकृति नहीं।

४९३ प्र० तीर्थंकरों के मोक्ष पधारने के पश्चात् उनके शव
को क्या तीर्थंकर का स्थापना-निक्षेप कह सकते हैं
अथवा नहीं ?

उ० नहीं ! उसे भी नहीं कह सकते क्योंकि तीर्थंकर
के मोक्ष पधारने के पश्चात् जो पिण्ड अवशेष रहता
है, उस पिण्ड का नाम तीर्थंकर की आत्मा-रहित
शरीर आदि भिन्न नाम हो जाता है। अतः वह मृतक
शरीर नाम का स्थापना-निक्षेप कहलाता है, तीर्थं-
कर नाम का नहीं।

४९४ प्र० तर्थकर की आत्मा जब गृहस्थावस्था के शरीर में
रहती है, उस समय उस शरीर को तीर्थंकर का
स्थापना-निक्षेप कर सकते है अथवा नहीं ?

उ० उसे भी तीर्थंकर का स्थापना-निक्षेप नही कह सकते
क्योंकि उस समय उनका नाम राजकुमार या राजा
होता है। अतः गृहस्थावस्था का शरीर राजकुमार
या राजा के नाम का स्थापना-निक्षेप कहलाता है,
तीर्थंकर का नही।

४९५ प्र० तीर्थंकर की आत्मा दीक्षा लेने के पश्चात् गृहस्था-
वस्था के समग्र सावद्य व्यापारों के त्या

सर्वव्रती साधुत्व की स्थिति में आ जाती है, तब उनकी आकृति को तीर्थंकर का स्थापना-निक्षेप कह सकते हैं या नहीं ?

उ० उस अवस्था की आकृति को भी तीर्थंकर का स्थापना-निक्षेप नहीं कहा जा सकता क्योंकि उस वक्त उनको छद्मस्थ साधु के नाम से पुकारते हैं। अतः वह आकृति छद्मस्थ साधु नाम का स्थापना निक्षेप कहलाता है। आजकल जितनी भी मूर्तियां व फोटो तीर्थंकर के नाम से बताई जाती है, वे सब तीर्थंकर सम्बन्धी सत्य स्थापना-निक्षेप नहीं हैं।

४९६ प्र० द्रव्य निक्षेप किसे कहते हैं ?

उ० नाम से संयुक्त स्थापना (आकृति) के अतिरिक्त पिण्ड स्वरूप पदार्थ को प्रधान रूप से द्रव्य-निक्षेप कहते हैं।

४९७ प्र० भाव निक्षेप किसको कहते है ?

उ० नाम से सम्बोधित स्थापना तथा द्रव्यगत गुणों से संयुक्त भाव प्रधान पदार्थ के कथन को भाव-निक्षेप कहते हैं।

४९८ प्र० ये चारों निक्षेप क्या आदरणीय, सम्माननीय, वन्दनीय तथा पूजनीय होते हैं ?

उ० ये तो वस्तु के स्वरूप को समझाने की स्थिति मात्र है। इतने मात्र से वे आदर सम्मान, वन्दन एवं पूजन योग्य नही होते।

४९९ प्र० कुछ लोग कहते हैं कि नाम-निक्षेप तो नहीं, परन्तु स्थापना-निक्षेप वन्दनीय पूजनीय होता है। क्या यह

ठीक है ?

उ० यह बात युक्तिसंगत नही है । उनसे पूछना चाहिए कि नाम-निक्षेप वन्दनीय पूजनीय क्यों नही ? यदि वे यह कहे कि नाम निक्षेप गुण-शून्य होने से वन्दनीय पूजनीय नही है तो उनसे कहना चाहिए कि स्थापना-निक्षेप भी नाम की तरह गुणशून्य है। अतः वह भी वन्दनीय पूजनीय नही हो सकता ।

५०० प्र० द्रव्य निक्षेप वन्दनीय पूजनीय है या नही ?

उ० नाम और स्थापना की तरह द्रव्य-निक्षेप भी गुण-शून्य होने से वन्दनीय पूजनीय नही है ।

५०१ प्र० भाव निक्षेप वन्दनीय पूजनीय है या नहीं ?

उ० आत्मपदार्थ-रहित केवल जड़ पदार्थ का भाव-निक्षेप वर्णादि गुणयुक्त होने पर भी वन्दनीय पूजनीय नही है।

५०२ प्र० आत्मपदार्थ का भाव निक्षेप वन्दनीय पूजनीय है या नही ?

उ० आत्मपदार्थ भी वन्दन करने वाली आत्मा से विशिष्ट ज्ञानादि गुणयुक्त हो तो उसके लिए वह वन्दनीय पूजनीय हो सकता है ।

५०३ प्र० सम्यग्दृष्टि जीव के लिए कौन कौन शरीरधारी आत्माएं वन्दनीय होती है ?

उ० देहधारी सम्यग्दृष्टि आत्मा के लिए पंचम आदि ऊपर के सर्व गुण स्थानों में वर्तमान देहधारी सभी आत्माएं वन्दनीय होती है ।

५०४ प्र० चतुर्थ गुण स्थान वाली आत्माएं परस्पर वन्दनीय

है या नहीं ?

उ० चतुर्थ गुण स्थानवर्ती आत्माएं भी गुण एवं अवस्था आदि की दृष्टि से परस्पर यथायोग्य अधिक गुणवाली और अवस्थावाली वन्दनीय होती हैं।

५०५ प्र० पंचमगुण स्थानवर्ती आत्मा क्या चतुर्थगुण स्थानवर्ती आत्मा को वन्दन करती है ?

उ० सैद्धान्तिक दृष्टि से वन्दन नही कर सकती।

५०६ प्र० पंचम गुण स्थान वाले चतुर्थगुण स्थानवर्ती को सैद्धान्तिक दृष्टि से नमस्कार क्यों नहीं कर सकते?

उ० गुण स्थान का अर्थ गुणों के स्थान यानी क्षयोपशम भाव से है। चतुर्थ गुण स्थानवर्ती चारित्र मोह कर्म की अप्रत्याख्यानी चौकड़ी का क्षयोपशम नही कर सकते। पंचम गुण स्थान में अप्रत्याख्यानी चोकड़ी का क्षयोपशम होने से चारित्र गुण की दृष्टि से पचम गुण स्थानवर्ती बड़ा है और चतुर्थ गुण स्थानवर्ती चारित्र मोहकर्म की अप्रत्याख्यानी चौकड़ी के उदय होने से छोटा है। अतः छोटा बड़े को नमस्कार करता है, बड़ा छोटे को नही।

५०७ प्र० देवयोनि में रहने वाले देव व्रतधारी मनुष्य की अपेक्षा अधिक ज्ञानी है, अतः ज्ञान की दृष्टि से उनको नमस्कार करना चाहिये या नहीं ?

उ० नही। चतुर्दश गुण स्थान आत्मशुद्धि की मुख्यता से प्रतिपादित किये गये है, सिद्ध ज्ञान की दृष्टि से नही। बड़े छोटे का विज्ञान आत्मशुद्धि-अशुद्धि से है।

५०८ प्र० आत्मशुद्धिमुख्यतौर पर किस कर्म के कमजोर पड़ने पर होती है ।

उ० मोह कर्म के कमजोर पड़ने पर आत्मशुद्धि की श्रेणी प्रारम्भ होती है । सम्यग् दृष्टि श्रावकपन आदि उसी के तारतम्य भाव पर निर्भर है, अतः आत्मशुद्धि रूप गुण की दृष्टि से छोटे बड़े की गणना उपयुक्त है ।

५०९ प्र० शरीरधारी आत्मपदार्थ का महावीर नाम रख दिया गया। वह नाम–निक्षेप वाला महावीर श्रावक श्राविकाओं के लिए क्या वन्दनीय होगा ?

उ० एक पिता ने अपने पुत्र का नाम महावीर रख दिया लेकिन पिता अपने महावीर नाम के पुत्र को नमस्कार नही कर सकता । इसी प्रकार केवल नाम-निक्षेप वन्दनीय नही होता ।

५१० प्र० नाम के साथ स्थापना–निक्षेप क्या वन्दनीय होता है या नही ?

उ० नही । उसी महावीर नाम वाले बच्चे की आत्मा-रहित शरीर की आकृति को तथा उसके फोटो को जनसाधारण स्थापना कहते है तो क्या वह पिता अपने पुत्र महावीर की फोटो को या आत्मा-रहित शरीर की आकृति को नमन करेगा ? उत्तर होगा कि नहीं । तो फिर स्थापना–निक्षेप को भी नमस्कार नही होता ।

५११ प्र० द्रव्य–निक्षेप को तो नमस्कार करना चाहिए या नही ?

उ० उसी महावीर नामक लड़के के हाड़ मांस आदि का जो शरीर पिण्ड है उसको द्रव्य-निक्षेप कहते हैं। उसका पिता अपने बच्चे के उस शरीर पिण्ड को नमस्कार नहीं करता, केवल नाम स्थापना और द्रव्य ये तीनों निक्षेप सर्वथा अवन्दनीय है।

५१२ प्र० भाव निक्षेप वन्दनीय है या नही ?

उ० वन्दन करने वाले की अपेक्षा जिसको वन्दन किया जाता है वह आत्मपदार्थ विशिष्ट चारित्र आदि गुण सम्पन्न हो तो वह भाव-निक्षेप वन्दनीय है लेकिन विशिष्ट चारित्र आदि गुण रूप भाव संपन्न आत्मपदार्थ से शून्य जड़ पदार्थ नाम, स्थापना, द्रव्य तथा वर्णगंध रसादिभाव युक्त होने पर भी जीव पदार्थ के लिए सर्वथा अवन्दनीय है।

५१३ प्र० प्रमाण किसे कहते है ?

उ० जिस ज्ञान शक्ति से स्व, पर स्वरूप को सही रूप मे निर्णीत किया जाय, उस शक्ति को प्रमाण कहते हैं

५१४ प्र० प्रमाण के कितने भेद होते है ?

उ० प्रमाण के मुख्य दो भेद है (१) प्रत्यक्ष और (२) परोक्ष।

५१५ प्र० प्रत्यक्ष प्रमाण किसको कहते है ?

उ० जिससे आकृति आदि का सही स्पष्ट विशेष अव-बोध हो, वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है।

५१६ प्र० प्रत्यक्ष प्रमाण के कितने भेद हैं ?

उ० दो भेद है (१) सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और (२) पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

५१७ प्र० सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसको कहते हैं ?

उ० इन्द्रिय और मन के माध्यम से स्व-पर वस्तु स्वरूप का सही निर्णायक अवबोध हो, उसको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। इसको अपेक्षा दृष्टि से परोक्ष भी कहते हैं।

५१८ प्र० सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

उ० इन्द्रिय और मन की अपेक्षा से मुख्य ६ भेद है ?

५१९ प्र० वे कौन कौन से है ?

उ० (१) श्रौत्र प्रत्यक्ष (२) चाक्षुप प्रत्यक्ष (३) घ्राण प्रत्यक्ष (४) रासनिक प्रत्यक्ष (५) त्वाच प्रत्यक्ष (६) मानस प्रत्यक्ष।

४२० प्र० श्रौत्र प्रत्यक्ष किसको कहते हैं ?

उ० श्रोत्रेन्द्रिय की मुख्यता से होने वाला सही अवबोध श्रौत्र प्रत्यक्ष कहलाता है।

५२१ प्र० चाक्षुष प्रत्यक्ष किसको कहते है ?

उ० चक्षुइन्द्रिय की मुख्यता से होने वाला सही अवबोध चाक्षुष प्रत्यक्ष कहलाता है।

५२२ प्र० घ्राण प्रत्यक्ष किसको कहते है ?

उ० घ्राण (नासिका) इन्द्रिय की मुख्यता से होने वाले सही अववोध को घ्राण प्रत्यक्ष कहते है।

५२३ प्र० रासनिक प्रत्यक्ष किसको कहते है ?

उ० रसना (जिह्वा) इन्द्रिय की मुख्यता से होने वाले सही अववोध को रासनिक प्रत्यक्ष कहते है।

५२४ प्र० त्वाच प्रत्यक्ष किसको कहते है ?

उ० त्वाच (स्पर्श) इन्द्रिय की मुख्यता से होने वाले

सही अवबोध को त्वाच प्रत्यक्ष कहते हैं।

५२५ प्र० मानस प्रत्यक्ष किसको कहते है ?

उ० मन की प्रमुखता से होने वाले सही अवबोध को मानस प्रत्यक्ष कहते हैं।

५२६ प्र० इन्द्रिय का ज्ञातव्य पदार्थो के साथ संयोग होने पर अवबोध होता है या इन्द्रिय का ज्ञातव्य पदार्थो के साथ संयोग हुए बिना ही अवबोध होता है ?

उ० दोनों प्रकार से अवबोध होता है।

५२७ प्र० वह किस प्रकार होता है ?

उ० मन और चक्षु इन दोनों इन्द्रियों का ज्ञातव्य पदार्थ के साथ संयोग हुए बिना ही अवबोध होता है, अतः इन दोनों को अप्राप्यकारी कहते हैं। शेष चार इन्द्रियां (श्रोत्र घ्राण रसन स्पर्शन) ज्ञातव्य पदार्थो के साथ संयोग होने पर ही अवबोध होता है, अतः ये चारों इन्द्रिया प्राप्यकारी कहलाती है।

५२८ प्र० पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसको कहते है ?

उ० इन्द्रिय आदि के माध्यम के बिना जिस आत्मीय शक्ति से स्व-पर का सही स्पष्ट अवबोध हो, वह पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहलाता है।

५२९ प्र० पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

उ० मुख्य रूप से दो भेद है। (१) सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष और विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

५३० प्र० विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते है ?

उ० इन्द्रियादि के माध्यम के बिना जिस आत्मीय शक्ति से द्रव्य क्षेत्रादिक मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थो का

सही स्पष्ट अवबोध हो, वह विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहलाता है।

५३१ प्र० विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद है ?

उ० मुख्य रूप से दो भेद है। (१) अवधिज्ञान (२) मनःपर्यय ज्ञान।

५३२ प्र० अवधि ज्ञान किसको कहते है ?

उ० द्रव्य क्षेत्रादि मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों का जिस शक्ति से सही अवबोध हो, वह अवधिज्ञान कहलाता है।

५३३ प्र० अवधि ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उ० उसके दो भेद है, छः भेद है एवं अनेक भेद भी है।

५३४ प्र० दो भेद कौन कौन से है ?

उ० (१) भव प्रत्यय और (२) गुण प्रत्यय।

५३५ प्र० भव प्रत्यय किसको कहते है ?

उ० भव यानी देवादि भव की प्रधानता से जो अवधिज्ञान हो, वह भव प्रत्यय अवधिज्ञान कहलाता है। यह मुख्य तौर पर देव और नारक को होता है।

५३६ प्र० गुण प्रत्यय किसको कहते है ?

उ० गुण यानी सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना की मुख्यता से जो अवधिज्ञान हो, वह गुण प्रत्यय अवधिज्ञान कहलाता है। यह मुख्य तौर पर तिर्यंच और मनुष्य को होता है।

५३७ प्र० अवधिज्ञान के ६ भेद कौन से है ?

उ० गुण प्रत्यय अवधिज्ञान के ६ प्रमुख भेद इस प्रकार है—(१) अनुगामी (२) अननुगामी (३) हीय

मान (४) वर्धमान (५) प्रतिपाति (६) अप्रतिपाति ।

५३८ प्र० अनुगामी किसको कहते है ?
उ० जो अवधिज्ञान, व्यक्ति जहां जाय वहां साथ रहे, वह अनुगामी अवधिज्ञान कहलाता है ।

५३९ प्र० अननुगामी अवधिज्ञान किसको कहते है ?
उ० जिस स्थान पर अवधिज्ञान पैदा हो, उसी स्थान पर रहे । अन्य स्थान पर जाने से न रहे, वह अननुगामी अवधिज्ञान कहलाता है ।

५४० प्र० हीयमान अवधिज्ञान किसको कहते है ?
उ० एक साथ अधिक उत्पन्न होकर फिर धीरे धीरे कम होता जाय, वह हीयमान अवधिज्ञान कहलाता है।

५४१ प्र० वर्धमान अवधिज्ञान किसको कहते है ?
उ० प्रारम्भ में स्वल्प उत्पन्न होकर आहिस्ते आहिस्ते बढ़ता जाय, वह वर्धमान अविधज्ञान कहलाता है।

५४२ प्र० प्रतिपाति अवधिज्ञान किसको कहते है ?
उ० जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर चला जाय, वह प्रतिपाति अवधिज्ञान कहलाता है ।

५४३ प्र० अप्रतिपाति अवधिज्ञान किसको कहते है ?
उ० जो अवधिज्ञान आने के पश्चात् जावे नही, वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान कहलाता है ।

५४४ प्र० मन:पर्यय ज्ञान किसको कहते हैं ?
उ० द्रव्य क्षेत्रादि मर्यादा को लिए अन्य के मन की रूपी पर्याय का जिस आत्मीय शक्ति से अवबोध हो, वह मन:पर्यय ज्ञान कहलाता है ।

५४५ प्र० मन:पर्यय ज्ञान के मुख्यत: कितने भेद है ?
उ० प्रमुख दो भेद हैं। (१) ऋजुमति (२) विपुलमति

५४६ प्र० ऋजुमतिज्ञान किसको कहते हैं ?
उ० विपुलमति की अपेक्षा कम विशुद्ध तथा उत्पन्न होकर क्वचित् कदाचित् पुन: चले जाने वाला ऋजुमति मन:पर्यय ज्ञान कहलाता है ।

५४७ प्र० विपुलमति मन.पर्यय ज्ञान किसको कहते हैं ?
ऋजुमति की अपेक्षा अधिक विशुद्ध तथा उत्पन्न होने पर नहीं जाने वाला विपुलमति मन:पर्यय ज्ञान कहलाता है ।

५४८ प्र० सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?
उ० केवलज्ञान को सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

५४९ प्र० केवलज्ञान किसको कहते हैं ?
उ० भूत, भविष्य और वर्तमान त्रिकालवर्ती रूपी अरूपी समग्र द्रव्य गुण पर्यायों को यथावस्था यथायोग्य स्पष्ट सही रूप से जाने, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

५५० प्र० परोक्ष प्रमाण किसको कहते है ?
उ० दूसरे की सहायतापूर्वक स्व-पर के स्वरूप को सही अवबोध कराने वाला परोक्ष प्रमाण कहलाता है

५५१ प्र० परोक्ष प्रमाण के कितने भेद हैं ?
उ० मुख्य रूप से पांच विभागों में विभक्त होने से उसके पांच भेद कहे जा सकते हैं।

५५२ प्र० पांच भेद कौन कौन से है ?
उ० (१) स्मरण (२) प्रत्यभिज्ञान (३) तर्क (४) अनुमान (५) आगम ।

के साधन धूम का अग्नि के बिना रहना शक्य नहीं है।

५६४ प्र० साध्य किसको कहते हैं ?

उ० जो सिद्ध न हो, लेकिन जिस का सिद्ध करना अभिष्ट हो, पर किसी से बाधित न हो, उसे साध्य कहते हैं।

५६५ प्र० जो सिद्ध न हो, इसका क्या अभिप्राय है ?

उ० अन्य प्रमाणों से जिसकी जहां सिद्धि न हो पाई हो अथवा जिसका जहां होना निश्चित न हो, उसे वहां सिद्ध न होना कहा जाता है।

५६६ प्र० जिसका सिद्ध करना जहां अभीष्ट हो, इसका आशय क्या है ?

उ० जिसको जहां वादी और प्रतिवादी दोनों सिद्ध करना चाहते हों, उसको "सिद्ध करना जहां अभीष्ट हो" कहा गया है।

५६७ प्र० किसी से बाधित न हो, इसका क्या तात्पर्य है ?

उ० जो सिद्ध किया जा रहा है, वह प्रत्यक्षादि अन्य किसी प्रमाण से खण्डित न हो, उसे किसी से बाधित न होना कहा गया है। जैसे—कोई अग्नि का शीतलपना रूप साध्य सिद्ध करना चाहे तो यह साध्य नहीं हो सकता क्योंकि शीतलपना प्रत्यक्ष प्रमाण से खण्डित, अग्नि शीतल नहीं, यह बात प्रत्यक्ष इसलिए ऐसा साध्य नहीं होता।

५६८ प्र० अनुमान किसको कहते हैं ?

उ० सच्चे साधन से साध्य का सही अवबोध हो, वह अनुमान कहलाता है।

५६९ प्र० अनुमान के कितने भेद हैं ?
अनुमान के दो भेद हैं ? (१) स्वार्थानुमान और (२) परार्थानुमान।

५७० प्र० स्वार्थानुमान किसको कहते हैं ?
उ० स्वयं के सच्चे अनुभव से साधन का साध्य के साथ सही सम्बन्ध विदित कर स्वयं के लिए साध्य को सिद्ध करना स्वार्थानुमान कहलाता है।

५७१ प्र० परार्थानुमान किसको कहते हैं ?
उ० स्वार्थानुमान के आधार पर प्रतिज्ञादि अवयवों के के माध्यम से अन्य व्यक्ति को साध्य का ज्ञान कराना परार्थानुमान कहलाता है।

५७२ प्र० प्रतिज्ञादि अवयव कितने है ?
उ० पांच है। (१) प्रतिज्ञा (२) हेतु (३) उदाहरण (४) उपनय (५) निगमन।

५७३ प्र० प्रतिज्ञा किसे कहते है ?
उ० पक्ष के अन्दर साध्य को सिद्ध करने के लिए पक्ष-युक्त साध्य वचन का दृढ़तापूर्वक कहना प्रतिज्ञा कहलाती है। यथा– यह पर्वत अग्नियुक्त है।

५७४ प्र० हेतु किसको कहते हैं ?
उ० साध्य को सिद्ध करने के लिए युक्ति-युक्त वाक्य का प्रयोग हेतु कहलाता है। यथा—क्योंकि यह पर्वत धूम वाला है।

५७५ प्र० उदाहरण किसको कहते हैं ?

के साधन धूम का अग्नि के बिना रहना शक्य नहीं है ।

५६४ प्र० साध्य किसको कहते हैं ?

उ० जो सिद्ध न हो, लेकिन जिस का सिद्ध करना अभिष्ट हो, पर किसी से बाधित न हो, उसे साध्य कहते है ।

५६५ प्र० जो सिद्ध न हो, इसका क्या अभिप्राय है ?

उ० अन्य प्रमाणों से जिसकी जहां सिद्धि न हो पाई हो अथवा जिसका जहां होना निश्चित न हो, उसे वहां सिद्ध न होना कहा जाता है ।

५६६ प्र० जिसका सिद्ध करना जहां अभीष्ट हो, इसका आशय क्या है ?

उ० जिसको जहां वादी और प्रतिवादी दोनों सिद्ध करना चाहते हों, उसको "सिद्ध करना जहां अभीष्ट हो" कहा गया है ।

५६७ प्र० किसी से बाधित न हो, इसका क्या तात्पर्य है ?

उ० जो सिद्ध किया जा रहा है, वह प्रत्यक्षादि अन्य किसी प्रमाण से खण्डित न हो, उसे किसी से बाधित न होना कहा गया है । जैसे—कोई अग्नि का शीतलपना रूप साध्य सिद्ध करना चाहे तो यह साध्य नहीं हो सकता क्योंकि अग्नि का शीतलपना प्रत्यक्ष प्रमाण से खण्डित है । अर्थात् अग्नि शीतल नहीं, यह बात प्रत्यक्ष से सिद्ध है । इसलिए ऐसा साध्य नहीं होता ।

५६८ प्र० अनुमान किसको कहते हैं ?

उ० सच्चे साधन से साध्य का सही अवबोध हो, वह अनुमान कहलाता है।

५६९ प्र० अनुमान के कितने भेद हैं ?
अनुमान के दो भेद हैं ? (१) स्वार्थानुमान और (२) परार्थानुमान।

५७० प्र० स्वार्थानुमान किसको कहते हैं ?
उ० स्वयं के सच्चे अनुभव से साधन का साध्य के साथ सही सम्बन्ध विदित कर स्वयं के लिए साध्य को सिद्ध करना स्वार्थानुमान कहलाता है।

५७१ प्र० परार्थानुमान किसको कहते है ?
उ० स्वार्थानुमान के आधार पर प्रतिज्ञादि अवयवों के के माध्यम से अन्य व्यक्ति को साध्य का ज्ञान कराना परार्थानुमान कहलाता है।

५७२ प्र० प्रतिज्ञादि अवयव कितने हैं ?
उ० पांच है। (१) प्रतिज्ञा (२) हेतु (३) उदाहरण (४) उपनय (५) निगमन।

५७३ प्र० प्रतिज्ञा किसे कहते है ?
उ० पक्ष के अन्दर साध्य को सिद्ध करने के लिए पक्ष-युक्त साध्य वचन का दृढ़तापूर्वक कहना प्रतिज्ञा कहलाती है। यथा- यह पर्वत अग्नियुक्त है।

५७४ प्र० हेतु किसको कहते है ?
उ० साध्य को सिद्ध करने के लिए युक्ति-युक्त वाक्य का प्रयोग हेतु कहलाता है। यथा—क्योंकि यह पर्वत धूम वाला है।

५७५ प्र० उदाहरण किसको कहते हैं ?

उ० व्याप्ति सहित अनुभूत साध्य साधन के दृष्टान्त स्थल का निर्देश करना उदाहरण कहलाता है। यथा—जहां जहां धूम होता है, वहां वहां अग्नि होती है जैसे भोजन घर। जहां जहां अग्नि नहीं, वहां वहां धूम भी नहीं। जैसे—सरोवर।

५७६ प्र० दृष्टान्त किसको कहते हैं ?

उ० विद्यमान या अविद्यमान साध्य साधन के अनुभूत स्थलों का निर्देश दृष्टान्त कहलाता है।

५७७ प्र० दृष्टान्त के कितने भेद हैं ?

उ० दृष्टान्त के मुख्य दो भेद है। (१) अन्वय दृष्टांत (२) व्यतिरेक दृष्टान्त।

५७८ प्र० अन्वय दृष्टान्त किसको कहते हैं ?

उ० साध्य के विद्यमान स्थल में साधन का विद्यमान बताना अन्वय दृष्टान्त कहलाता है। यथा-भोजन गृह।

५७९ प्र० व्यतिरेक दृष्टान्त किसे कहते हैं ?

उ० साध्य के अविद्यमान स्थल पर साधन की अनुपस्थिति के निर्देश स्थल को उपस्थित करना व्यतिरेक दृष्टान्त कहलाता है। जैसे—अग्नि रूप साध्य के लिए सरोवर।

५८० प्र० उपनय किसे कहते हैं ?

उ० पक्ष में साध्य के साथ रहने वाले साधन की दृष्टान्त के साथ समानता दिखलाना उपनय कहलाता है। यथा—यह पर्वत भी वैसा ही धूमवान है।

५८१ प्र० निगमन किसको कहते हैं ?

उ० पूर्व के चारों वाक्यों से निष्कर्ष निकालकर प्रतिज्ञा का पुनः उच्चारण करना निगमन कहलाता है। यथा—इसलिए यह पर्वत अग्नि वाला है।

५८२ प्र० हेतु (साधन) कितने प्रकार के होते हैं ?

उ० हेतु (साधन) तीन प्रकार के होते है (१) केवलान्वयी (२) केवल व्यतिरेकी (३) अन्वय व्यतिरेकी।

५८३ प्र० केवलान्वयी किसे कहते हैं ?

उ० जिस हेतु (साधन) में सिर्फ अन्वय दृष्टान्त हो वैसे हेतु को केवलान्वयी कहते है। यथा–आत्मा अनेकान्त स्वरूप है क्योंकि सत्स्वरूप है। जो २ सत्स्वरूप होता है, वह २ अनेकान्त स्वरूप होता है जैसे धर्मास्तिकायादिक।

५८४ प्र० केवल व्यतिरेकी किसको कहते हैं ?

उ० जिस हेतु में सिर्फ व्यतिरेकी दृष्टान्त हो, वह व्यतिरेकी हेतु कहलाता है। जैसे जीवन्त शरीर में आत्मा है क्योंकि उसमें श्वासोच्छ्वास है। जहां जहां आत्मा नही होता, वहां वहां श्वासोच्छ्वास भी नहीं होता। जैसे घट पट कपाटादि।

५८५ प्र० अन्वय व्यतिरेकी हेतु किसे कहते है ?

उ० जिसमें अन्वय दृष्टान्त तथा व्यतिरेक दृष्टान्त दोनों पाये जाय, उसे अन्वय व्यतिरेकी हेतु कहते है। यथा—जैसे पर्वत में अग्नि है क्योंकि इस में धूम हेतु है। यथा—जहां जहां धूम है, वहां वहां अग्नि है। जैसे भोजन शाला। जहां जहां अग्नि नहीं है, वहां वहां धूम भी नहीं है। जैसे सरोवर।

५८६-प्र० व्याप्ति के कितने भेद हैं ?

उ० व्याप्ति के दो भेद हैं (१) अन्तर्व्याप्ति और (२) वहिर्व्याप्ति ।

५८७ प्र० अन्तर्व्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ० पक्ष में साध्य साधन का अविनाभाव सम्बन्ध ज्ञात हो अथवा स्वार्थानुमान की व्याप्ति हो, वह अन्तर्व्याप्ति कहलाती है ।

५८८ प्र० बहिर्व्याप्ति किसको कहते हैं ?

उ० अन्तर्व्याप्ति के स्वरूप से भिन्न व्याप्ति को बहिर्व्याप्ति कहते हैं।

५८९ प्र० पक्ष किसे कहते हैं ?

उ० जिसमें हेतु आदि से साध्य सिद्ध करना हो, वह पक्ष कहलाता है । जैसे धूम हेतु से पर्वत में अग्नि सिद्ध करना हो तो पर्वत पक्ष कहलाता है ।

५९० प्र० समक्ष किसे कहते हैं ?

उ० जिसमें हेतु आदि से साध्य निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका हो, उसे समक्ष कहते हैं। जैसे - धूम रूप हेतु का समक्ष धूम युक्त अग्नि सहित भोजन शाला है

५९१ प्र० विपक्ष किसको कहते है ?

उ० अविनाभाव सम्बन्धयुक्त साध्य साधन का जिसमें अभाव हो, वह विपक्ष कहलाता है। जैसे व्यतिरेक दृष्टान्त स्थल ।

५९२ प्र० हेत्वाभास (साधनाभास) किसे कहते हैं ?

उ० हेतु की समानता होने पर भी दोषयुक्त हो, वह हेत्वाभास कहलाता है ।

५६३ प्र० हेत्वाभास के कितने भेद हैं ?

उ० मुख्यतौर पर चार भेद किये जा सकते है। (१) असिद्ध (२) विरुद्ध (३) अनेकान्तिक (व्यभि-चारी) (४) महत्त्वहीन।

५६४ प्र० असिद्ध हेत्वाभास किसे कहते है ?

उ० जिस हेतु की साध्य—स्थल पर अविद्यमानता निश्चित है, अथवा संशयशील (शंका) हो, उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं। जैसे—शब्द नित्य है, क्योकि नेत्र का विषय है। यहां पर शब्द स्थल में नित्यत्व रूप साध्य सिद्ध करने के लिए नेत्र विषय रूप हेतु शब्द स्थल पर विद्यमान नहीं है क्योंक शब्द कर्ण का विषय है, अतः शब्द स्थल पर कर्ण के विषय की विद्यमानता है पर नेत्र के विषय रूप हेतु की अविद्यमानता होने से नेत्र का विषय हेतु असिद्ध हेतु कहलाता है।

५६५ प्र० विरुद्ध हेत्वाभास किसको कहते है ?

उ० जिस हेतु की व्याप्ति साध्य के प्रतिकूल पदार्थ के साथ हो, उसको विरुद्ध हेत्वाभास कहते है। जैसे शब्द नित्य है क्योकि परिणामी है। इस अनुमान मे शब्द में नित्यपना साध्य वतलाया गया है और हेतु परिणामी है। नित्य रूप साध्य का प्रतिपक्षी अनित्य पदार्थ है परिणामी हेतु की व्याप्ति अनित्य पदार्थ के साथ होने से परिणामी हेतु विरुद्ध भास कहलाता है।

५६६ प्र० अनेकान्तिक हेत्वाभास किसक

उ० जो हेतु पक्ष में भी रहे औ

जैसे—मकान में धूम है, क्योंकि अग्नि है। इस प्रयोग में धूम रूप साध्य अग्नि रूप साधन (हेतु) है। यह अग्नि रूप हेतु कभी धूम के साथ भी रहता है और धूम के अभाव स्वरूप अयोगोलक में भी रहता है, अतः अनेकान्तिक हेत्वाभास है।

५९७ प्र० महत्त्वहीन हेत्वाभास किसे कहते है ?
उ० जिस हेतु का साध्य सिद्ध करने में कोई महत्त्व न हो, उसे महत्त्वहीन हेत्वाभास कहते हैं।

५९८ प्र० महत्त्वहीन हेत्वाभास के कितने भेद हैं ?
उ० महत्त्वहीन हेत्वाभास के कई भेद किये जा सकते हैं। जैसे प्रतीत साध्य, सिद्ध साधन, निराकृत साध्य आदि।

५९९ प्र० प्रतीत साध्य किसको कहते है।
उ० जिस हेतु का साध्य सबको मालूम हो उसे प्रतीत साध्य कहते है—जैसे सूर्य प्रकाशवान है।

६०० प्र० सिद्ध साधन हेत्वाभास किसको कहते है ?
उ० जिस हेतु का कार्य सिद्ध हो चुका हो, उसी कार्य के लिए उसी हेतु से सिद्ध करने के लिए फिर प्रयोग करना सिद्ध साधन हेत्वाभास कहलाता है। जैसे रसोई-घर अग्निमान है, धूम होने से।

६०१ प्र० निराकृत साध्य हेत्वाभास किसे कहते है ?
उ० जो हेतु अन्य अवस्था से निराकृत यानी बाधित हो वह निराकृत हेत्वाभास है। जैसे अग्नि ठडी है स्पर्शत्वात्।

६०२ प्र० निराकृत हेत्वाभास के कितने भेद हैं ?

उ० मुख्य चार भेद है। (१) प्रत्यक्ष निराकृत (२) अनुमान निराकृत (३) स्व वचन निराकृत (४) आगम निराकृत हेत्वाभास।

६०३ प्र० प्रत्यक्ष निराकृत किसको कहते हैं ?

उ० जिस हेतु के साध्य में प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधा आवे, उसे प्रत्यक्ष निराकृत कहते हैं। यथा अग्नि शीत स्पर्शवाली है क्योकि यह पदार्थ है। इस पदार्थ रूप हेतु का साध्य जो शीत स्पर्श है, वह प्रत्यक्ष से वाध्य है।

६०४ प्र० अनुमान निराकृत किसे कहते है ?

उ० जिस हेतु के साध्य में अनुमान प्रमाण से बाधा आती हो, उसे अनुमान निराकृत हेत्वाभास कहते है। जैसे मूल रूप से पृथ्वी आदि वनाई गई है क्योंकि यह कार्य है। इस प्रयोग मे समझना है कि मूल रूप से पृथ्वी आदि किसी की वनाई हुई नही है क्योंकि इसका वनाने वाला कोई शरीरधारी नहीं है। जो जो पदार्थ शरीरधारी के वनाये हुए नहीं है, वे वे पदार्थ कर्त्ता के वनाये हुए नही है यथा आकाश। इस अनुमान से ऊपर का प्रयोग गलत होता है। अतः यह अनुमान निराकृत हेत्वाभास है।

६०५ प्र० स्ववचन निराकृत हेत्वाभास किसे कहते है ?

उ० जिस साध्य को सिद्ध करने से सिद्ध करनेवाले स्वयं के वचन से ही वाधा आ जाय वह स्व-वचन निराकृत हेत्वाभास कहलाता है—जैसे किसी ने "मेरी माता वन्ध्या है क्योंकि पुरुष का पर भी उसके गर्भ नही रहा।"

स्वयं का वचन ही वाधक बन रहा है। यदि माता बन्ध्या है तो वह बोलने वाला उससे उत्पन्न कैसे हुआ और यदि वह उससे पैदा हुआ है तो माता बन्ध्या कैसे हो सकती है ?

६०६ प्र० आगम निराकृत हेत्वाभास किसे कहते है ?

उ० आगम से जो वाधित होता हो, उसे आगम निराकृत हेत्वाभास कहते है। जैसे अहिसा अधर्म है क्योंकि वह कायरता सिखलाती है। यह आगम से वाधित है क्योंकि आगम अहिसा को धर्म बताता है और वीरता सिखाता है।

६०७ प्र० आगम किसको कहते है ?

उ० आप्त वचन (मौखिक अथवा संकलित) जो यथार्थ ज्ञान उत्पन्न कराने में सहायक है, वह आगम कहलाता है।

६०८ प्र० आप्त किसको कहते है ?

उ० चार घनघाती कर्मो से सर्वथा रहित उत्पन्न केवल ज्ञान, केवल दर्शन आदि गुणों से संयुक्त वीतराग देव को आप्त कहते है।

६०९ प्र० प्रमाण का विषय क्या है ?

उ० सामान्य और विशेष धर्मवाला पदार्थ प्रमाण का विषय है।

६१० प्र० विशेष किसको कहते है ?

उ० अन्य वस्तुओं से वस्तु की विशेषता जिन स्वरूपगत हिस्से व गुणों से हो, वह विशेष कहलाता है।

६११ प्र० विशेष के कितने भेद है ?

उ० मुख्य दो भेद हैं (१) एक स्वरूप सहभावी विशेष

(२) क्रमिक रूपान्तरित सहभावी विशेष।

६१२ प्र० एक स्वरूप सहभावी विशेष किसको कहते है ?

उ० वस्तु के परिपूर्ण स्वरूप में तथा उसी वस्तु की सर्व अवस्थाओं में तदाकार स्वरूप से एकसा रहने वाला एक स्वरूप सहभावी विशेष कहलाता है, जिसको गुण शब्द से भी पुकारा जाता है ।

६१३ प्र० क्रमिक रुपान्तरित सहभावी विशेप किसे कहते है?

उ० एक के पश्चात् दूसरी अवस्था में परिणत होता हुआ भी वस्तु स्वरूप के साथ विद्यमान रहने वाला क्रमिक रुपान्तरित सहभावी विशेष कहलाता है, जिसे पर्याय स्वरूप भी कहा जाता है ।

६१४ प्र० प्रमाण ज्ञान का फल क्या है ?

उ० इससे सम्यग्ज्ञान की अवस्था बनती है ।

६१५ प्र० प्रमाणाभास किसको कहते है ?

उ० प्रमाण के समान मालूम होता हो परन्तु मिथ्याज्ञान हो, उसे प्रमाणाभास कहते है।

६१६ प्र० मिथ्या ज्ञान से क्या फल होता है ?

उ० मिथ्यात्व दशा की प्राप्ति होती है, जिससे अनेक भवों तक संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है ।

६१७ प्र० मिथ्यात्व लगने वाला मिथ्या ज्ञान किस रूप में होता है ?

उ० जीवादि नव तत्त्वों का तथा देव गुरु धर्म का सही ज्ञान नहीं होना, विपरीतादि रुप से ज्ञान का होना, अतत्त्व में तत्त्व मानना, धर्म में अधर्म ग्र की अवस्था मानना, मिथ्यात्व लगने वाला [illegible] ज्ञान कहलाता है ।

६१८ प्र० मिथ्या ज्ञान के कितने भेद है ?

उ० मिथ्या ज्ञान के भेदों की संख्या बहुत है परन्तु मुख्य रूप से १० भेद है ।

६१९ प्र० वे दस भेद कौन कौन से है ?

उ० मिथ्यात्व के दस भेद इस प्रकार है—(१) जीव को अजीव (२) अजीव को जीव (३) धर्म को अधर्म (४) अधर्म को धर्म (५) असाधु को साधु (६) साधु को असाधु (७) मोक्ष मार्ग को संसार का मार्ग (८) संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग (९) अष्ट कर्म से मुक्त को अमुक्त और (१०) अमुक्त को मुक्त समझना ।

६२० प्र० जीव को अजीव समझना कैसा ज्ञान है ?

उ० उपयोगवान आत्मा को जीव कहते है। जैसे शरीर धारी आत्मा । जो उपयोगवान नहीं है, उसको अजीव कहते है। जैसे काष्ठ का स्तम्भ, पट्ट आदि। शरीरधारी आत्मा को अजीव कहना या समझना मिथ्या ज्ञान है।

६२१ प्र० शरीरधारी आत्मा के शरीर को अजीव कह सकते है या नही ?

उ० जब तक शरीर में उपयोगवान आत्मा है, तब तक शरीर को भी अजीव नहीं कह सकते क्योंकि सम्मिश्रण अवस्था में कथन प्रायः वस्तु की मुख्यता पर अवलम्बित रहता है। अतः जीवित शरीर में उपयोगवान जीव की मुख्यता होने से आत्मायुक्त शरीर को भी अजीव नही कह सकते । यदि सजीव

शरीर को कोई अजीव समझता है तो वह ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहलायेगा क्योंकि यह अन्यमतियों का कथन है जैन मत का नहीं। (भगवती शतक १७ मे)

६२२ प्र० जीव रूपी है या अरूपी है ?

उ० जीव एक अपेक्षा से रूपी है और दूसरी अपेक्षा से अरूपी भी है।

६२३ प्र० जीव को सिर्फ अरूपी बताते है, वह रूपी कैसे हो सकता है ?

उ० सिर्फ एकान्त को लेने वाले मिथ्या ज्ञानी, जीव को केवल अरूपी कहते है परन्तु अनेकान्तवादी, सम्यक् ज्ञानी अपेक्षा से जीव को रूपी और अरूपी दोनो बताते है।

६२४ प्र० जीव किस अपेक्षा से रूपी कहलाता है ?

उ० संसारी जीवों की अपेक्षा से वह रूपी कहलाता है।

६२५ प्र० संसारी जीव रूपी क्यों कहलाते है ?

उ० औदारिक, तेजस, कार्मण आदि शरीरो मे ओत-प्रोत है और अनादि काल से इन्हीं में रह रहे है और इन्ही में रहते हुए शुभाशुभ कर्म का सम्पादन करते है। इन्ही शरीरो के माध्यम से धर्म करते है, कर्म तोड़ते है और मोक्ष भी अन्तिम अवस्था में प्राप्त कर सकते है। चतुर्दश गुण स्थान पहले की सब अवस्थाएं वर्णगन्धादि से युक्त होने से जीव रूपी भी कहलाते है।

६२६ प्र० इस उपर्युक्त अपेक्षा से आत्मा को रूपी ने

तो क्या आपत्ति हो सकती है ?

उ० (क) इस प्रकार अपेक्षा से आत्मा को रूपी न मान कर केवल अरूपी ही माना जाय तो अनेक बाधाएं आयेंगी । अरूपी जीव इन्द्रिय-ग्राह्य तो रहेगा नही, फिर कायिक, वाचिक आदि हिसा का निषेध या विधान करना निरर्थक रहेगा ।

(ख) यह एकेन्द्रिय जीव है, यह द्वीन्द्रिय जीव है, यह त्रीन्द्रिय जीव है और यह चार या पाच इन्द्रियों वाला जीव है । यह कथन भी मिथ्या होगा ।

(ग) यह जीव के लिए भक्ष्य है और यह जीव के लिए भक्ष्य नही है, यह भी कथन व्यर्थ होगा क्योंकि अरूपी जीव के रूप तो है नही, फिर भक्ष्य और अभक्ष्य किसके लिए कहा जायगा ?

(घ) बोलना, चलना, खाना, पीना आदि शरीर सम्बन्धी समस्त क्रियाएं ज्ञानपूर्वक व विवेकपूर्वक होती है, जो कि अजीव नही कर सकता क्योंकि चैतन्यरहित अजीव में ज्ञान एवं विवेक तीन काल में भी नहीं होता ।

ऐसी अनेक आपत्तियां सब जीवो को अरूपी मानने पर आती है और वस्तु का यथार्थ स्वरूप भी समझ नही पाने से मिथ्यात्व लगता है । अतः संसारी जीवों को अपेक्षा से रूपी सिद्ध जीवों को अपेक्षा से अरूपी समझना सम्यक् ज्ञान का फल है ।

६२७ प्र० संसारी जीव को अपेक्षा से रूपी कहा जाता है

तो क्या संसारी जीव को अपेक्षा से अरूपी भी कह सकते हैं ?

उ० हां, अपेक्षा से कहा जा सकता है। रूपी व अरूपी दोनों निषेध एकान्त का है, अनेकान्त का नहीं।

६२८ प्र० किस अपेक्षा से संसारी जीव को भी अरूपी कहा जा सकता है ?

उ० जीव की आत्मत्व दृष्टि यानी द्रव्यत्व दृष्टि से सिद्ध स्वरूप सत्ता जीवों में विद्यमान् होने से उस अंश को नय की दृष्टि से प्रतिपादन करने की अपेक्षा से जीव को अरूपी कह सकते हैं, अन्य दृष्टि से नहीं।

६२९ प्र० सिद्ध स्वरूपी आत्मा के लिए भी "अपेक्षा से" शब्द का प्रयोग किया गया है तो क्या सिद्धों की आत्मा भी किसी अपेक्षा से रूपी कही जा सकती है?

उ० हां, अवश्य कही जा सकती है। सिद्धों की आत्मा के लिए जो अरूपी शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह वर्ण गन्धादि उनमें नहीं होने की अपेक्षा से किया जाता है, न कि आत्मप्रदेशों के आकार के अभाव की दृष्टि से।

६३० प्र० सिद्धों में रूप भी है, यह कैसे समझा जाय ?

उ० सिद्धों की अवगाहना (आकार) मानी गई है। आकार आत्मप्रदेशों का है और वह आकार ज्ञानी अपने ज्ञान में देखते हैं। अतः आकार की अपेक्षा से रूपी भी है।

६३१ प्र० क्या इस विषय में आगमीय प्रमाण भी

उ० हां, बहुत से प्रमाण हैं। इन्हीं आधारों को मुख्य मान कर जीवों के सिद्ध संसारी, रूपी अरूपी त्रस स्थावर आदि विविध रूपों का प्रतिपादन हुआ है।

६३२ प्र० अजीव को जीव समझने का मिथ्यात्व कैसे लगता है ?

उ० जिस शरीर से उपयोगवान आत्मा निकल गई है, उस आत्मारहित शरीर को अथवा आत्मारहित फोटो को आत्मारहित ताम्बा पीतल पाषाण आदि किसी भी धातु की व अन्य किसी पदार्थ की प्रतिमा आदि की आकृति को जो कि जीव से रहित है, जीव समझने से अजीव को जीव समझने का मिथ्यात्व लगता है।

६३३ प्र० फोटो तथा ताम्बे पाषाण आदि की आकृति को जीव नहीं समझते हुए पिता, देव अथवा भगवान् समझने में क्या आपत्ति है ?

उ० पिता, देव व भगवान् आदि जीवमय हैं, अतः उनकी जीव-रहित फोटो या प्रतिमा आदि को जीवमय पिता, देव या भगवान् कहना या मानना भूल और मिथ्याज्ञान है।

६३४ प्र० शीतला माता, भैरू, भवानी आदि भी पाषाण रूप में देव समझे जाते हैं तो उसमें क्या मिथ्यात्व लगता है ?

उ० देवी देवता पाषाण के बने हुए नहीं होते। वे तो वैक्रिय शरीर वाले होते हैं। उनको पाषाण रूप में समझने से मिथ्यात्व लगता है।

६३५ प्र० धर्म को अधर्म समझने का मिथ्यात्व कैसे लगता है?

उ० श्रुत धर्म (सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन) चारित्र धर्म (पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, बारह तप आदि) को धर्म न मान कर अधर्म मानने से धर्म को अधर्म समझने का मिथ्यात्व लगता है।

६३६ प्र० अधर्म को धर्म समझने का मिथ्यात्व कैसे लगता है?

उ० मिथ्याज्ञान व मिथ्या श्रद्धा को तथा हिंसादि निषिद्ध पापों को धर्म समझने से अधर्म को धर्म समझने का मिथ्यात्व लगता है।

६३७ प्र० साधु को असाधु समझने का मिथ्यात्व कैसे लगता है?

उ० सम्यक् श्रद्धा के साथ पांच महाव्रतों का अंगीकार करने वाले पांच समिति तीन गुप्ति को धारणकर मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि चिन्हों से युक्त हो कर छः काय जीवों की रक्षा करने वाले २७ गुण युक्त साधु को असाधु कहने से साधु को असाधु समझने का मिथ्यात्व दोष लगता है।

६३८ प्र० असाधु को साधु समझने का मिथ्यात्व किसे कहते है?

उ० सम्यक् श्रद्धापूर्वक पांच महाव्रत स्वीकार नही करने वाले, पांच समिति तीन गुप्ति को स्वीकार नही करने वाले, मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि चिन्हों से रहित खुले मुंह बोलने वाले जिनका जीव रक्षा में विश्वास नहीं हो, रेल, मोटर आदि वाहनों को काम में लाते हों, नग्न रहते हों, जिनको स्त्रियां छूती हों, जो एक घर में भोजन करते आरंभ समारंभ का उपदेश देते हों, बिना की साक्षी के स्त्रियों को उपदेश देते हों,

लिफाफे आदि रखते हों, जो राजा महाराजा की तरह ग्रामानुग्राम बहुत दूर २ तक साथ में चलकर सेवा करने का उपदेश देते हों एवं साथ की सेवा की पारी बांध कर गृहस्थों को त्याग करवाते हों आदि अनेक तरह की गृहस्थ अवस्था की सावद्य प्रवृत्ति करने वाले को, कराने वाले को, साधु समझना, असाधु को साधु समझने का मिथ्यात्व कहलाता है ।

६३६ प्र० मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग बताने का मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

उ० सम्यक् ज्ञान दर्शन और चारित्र इन तीनों का व्यक्ति में एक साथ सद्भाव होने पर मोक्ष का मार्ग बनता है । पृथक् २ रहने पर नहीं बनता। परन्तु जो ज्ञान और श्रद्धा को तो मोक्ष मार्ग माने और पांच महाव्रतादि के आचरणों को संसार-मार्ग समझे, वन्ध के कारण माने, निर्जरा के कारण नहीं माने, ऐसा मानना, मोक्ष मार्ग संसार का मार्ग मानने रूप मिथ्यात्व कहलाता है ।

६४० प्र० क्या ज्ञान और श्रद्धा मोक्ष का मार्ग नहीं बनते?

उ० नहीं, क्योंकि पांच व्रतों आदि का मन, वचन और काया में परिणत करने रूप चारित्र मोक्षमार्ग के अंग को संसार मार्ग मानने पर ज्ञान और श्रद्धा भी मिथ्या होने से मोक्ष मार्ग के अंग स्वरूप सही नहीं होते है वल्कि मिथ्या वन जाते हैं। अतः मोक्ष मार्ग तो दूर रहा, मोक्ष मार्ग के अंग रूप भी नही रहते ।

६४; प्र० संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग मानने का मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

उ० हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी, अब्रह्मचर्य आदि आश्रवों का सेवन करना, विवाह शादी करने में एवं बाल-बच्चे पैदा करने में धर्म मानना, पांच इन्द्रियां ही स्त्री आदि का सेवन करती हैं आत्मा स्त्री का सेवन नहीं करती, ऐसी मान्यता रखना, आसक्तिपूर्वक मोह के साधन एकत्रित करने वाले संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग मानने का मिथ्यात्व कहलाता है।

६४२ प्र० आठ कर्मों से मुक्त को अमुक्त कहने का मिथ्यात्व किसको कहते है ?

उ० आठ कर्मों से सर्वथा रहित सिद्ध भगवान् को आठ कर्मों से युक्त है, ऐसा कहना व मानना आठ कर्मों से मुक्त को अमुक्त कहने का मिथ्यात्व कहलाता है।

६४३ प्र० आठ कर्मों से अमुक्त को मुक्त कहने का मिथ्यात्व किसको कहते है ?

उ० जो अभी आठ कर्मों से संयुक्त हैं, उन्हें आठ कर्मों से रहित सिद्ध ईश्वर ही मानना, जैसे—वासुदेव आदि को, चाहे वर्तमान में किसी भी योनि में रहते हों, यह कहना कि वे आठ कर्मों से रहित सिद्ध ईश्वर ही है, अमुक्त को मुक्त कहने का मिथ्यात्व कहलाता है।

६४४ प्र० मिथ्यात्व के सामान्य व विशेष कितने भेद हैं ?

उ० मिथ्यात्व के दश भेद तो सामान्य रूप से बताये हैं

किन्तु विशेष भेद अनेक हो सकते हैं।

६४५ प्र० विशेष भेद कौन कौनसे हैं?

उ० विशेष भेद अनेक हैं। उनमें से कुछ यहां दिये जाते हैं:—एकान्त मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, एकांत कर्तृत्व मिथ्यात्व आदि।

६४६ प्र० एकान्त मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ० आत्मा, परमाणु, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि सब पदार्थों का स्वरूप अपने आप में अनेक धर्मों से संयुक्त होने पर भी उन पदार्थों को सिर्फ एक ही धर्म मानना एकान्तमिथ्यात्व कहलाता है। जैसे आत्मा को सर्वथा नित्य मानना, अथवा आत्मा को सर्वथा क्षणिक मानना एवं आत्मा पर जड़ का सर्वथा कुछ भी असर नहीं होना मानना तथा जड़ पर आतमा का कुछ भी असर नहीं होना समझना, इसी प्रकार उपादान को ही सब कुछ मानना, निमित्त का सर्वथा निषेध करना, व्यवहार को निश्चय से सर्वथा भिन्न मानना, व्यवहार का निश्चय से कोई भी सम्बन्ध नहीं मानना, साध्यगत धर्म को ही मानना, साधनगत धर्म को सर्वथा नही मानना आदि एकान्त मिथ्यात्व के अनेक उदाहरण है।

६४७ प्र० विपरीत मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ० जीवादि तत्वो के स्वरूप को अन्यथा मानना, विपरीत मिथ्यात्व कहलाता है। जैसे—आत्मा को भौतिक तत्वमय ही मानना, भौतिकतत्वों से भिन्न चैतन्य तत्व का अस्तित्व कतई नहीं है, ऐसा मानना

अथवा चैतन्य आत्मा का कर्म और शरीर युक्त रहने पर भी कर्म व शरीर का सर्वथा कर्त्ता नहीं है ऐसा मानना, कर्म शरीर युक्त आत्मा को एकांत अरूपी ही मानना, कर्म व शरीर में रहती हुई आत्मा कथंचित् रूपी भी है ऐसा नहीं मानना, शरीर युक्त आत्मा शरीर व इन्द्रियों के माध्यम से खाना, पीना, चलना, देखना आदि जो भी क्रियाएं करती है, उन क्रियाओं को जड़ की ही क्रिया मानना, मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि साधु के चिह्न-रहित तथा आवश्यक लज्जा-निवारक वस्त्र से भी शून्य सर्वथा नग्न वस्ती के वीच विभत्स दृश्य को उप-स्थित करने वाले को निर्ग्रन्थ गुरु के रूप में मानना, स्त्री शरीर से युक्त साधु (मुनि) पर्याय को नहीं मानना, एवं स्त्री को मोक्ष नहीं होने की वात वताना, वेदनीय आदि चार अघाती कर्मों से युक्त केवली भगवान् के कवलाहार को नहीं मानना, पूर्व के असाता वेदनीय कर्म के उदयजन्य रोगादिक को सर्वथा स्वीकार नही करना, शुभ राग से यानी प्रशस्त रागादि से प्राप्त पुण्य के फल स्वरूप शरीर आदि के निमित्त से सम्यक्त्वसहित तप संयम की आराधना से केवलज्ञान पूर्वक मोक्ष प्राप्त करने की वात को स्वीकार नहीं करना, गुरु उपदेश आदि निमित्त से श्रुत धर्म चारित्र धर्म को नहीं मानना, आदि अनेक तरह से जीवादि तत्वों के स्वरूप को विप-रीत रूप से जानना, मानना व अन्य को समझाना विपरीत मिथ्यात्व कहलाता है।

६४८ प्र० संशय मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

उ० विरुद्ध अनेक कोटि स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे—आत्मा अपने कर्मों का कर्त्ता है या नहीं, जीवादि तत्व माना जाय या नहीं, श्रुत धर्म और चारित्र धर्म आत्मा का कल्याण करने वाला है या नहीं आदि अनेक तरह के संशय का निवारण नहीं करना और निवारण किये जाने पर भी हठाग्रह करना संशय-मिथ्यात्व कहलाता है।

६४९ प्र० अज्ञान मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ० अज्ञान अवस्था को अच्छी मानना, हित-अहित के विवेक का कुछ भी ज्ञान नहीं करना, अज्ञान मिथ्यात्व कहलाता है। जैसे—मैं कुछ भी नहीं जानता, इससे मुझे पाप नहीं लगता। पशुवध अथवा झूठ आदि पापों में धर्म मानना आदि अज्ञान मिथ्यात्व है।

६५० प्र० विनय मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ० गुण अवगुण का विचार किये बिना ही सभी प्राणियों को हाथ जोड़ कर नमस्कार करने को ही सब कुछ समझना, प्राणियों में मनुष्य के अतिरिक्त गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, चूहे आदि सभी पशुओं को भी नमस्कार करना विनय मिथ्यात्व है।

६५१ प्र० एकांत कर्तृत्व मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ० वस्तु के स्वभाव को ही संसार का कर्ता मानना, अथवा काल को ही एक मात्र संसार का कर्ता मानना, नियति भाग्य होनहार को ही सब कुछ मानना एवं एकान्त रूप से चलने वाले धर्माभासों को भी वीत-

उ० तीन भेद हैं। (१) नैगम (२) संग्रह (३) व्यवहार

६५९ प्र० नैगम नय किसको कहते है ?

उ० (क) "न एको गमो ज्ञानस्य प्रकारो इति नैगम:" अर्थात् जिस नय के ज्ञान का प्रकार (भेद) एक ही नहीं, अनेक है वह नैगम नय कहलाता है। देश, काल, लोक, स्वभाव सम्बन्धी भेदों की विविधता के कारण लोकरूढियों तथा उनसे पैदा होने वाले संस्कार भी अनेक प्रकार के होते है। ऐसे संस्कारों से होने वाला ज्ञान भी विविध प्रकार के भेद वाला होता है। इससे नैगम नय अनेक प्रकार का है।

(ख) दो पदार्थो के दूध पानी की तरह मिल जाने पर किसी एक की प्रधानता और अन्य की गौणता अथवा भेद तथा अभेद के मुख्य गौण भाव से कथन करना नैगम नय है। यथा शरीर युक्त आत्मा को रूपी आत्मा, यह शरीर मेरा है इत्यादि।

(ग) सद्भूत अश को लेकर भी कहा जाता है कि निगोद के जीव सिद्धों जैसे है। चौदहवें गुण स्थानवर्ती जीवो को नैगम नय के अंशग्राही दृष्टि से संसारी जीव कह सकते है।

(घ) संकल्प ग्राही भी नैगम नय होता है। जैसे किसी ने भोजन बनाने की भावना से आटे के हाथ लगाया, तब पूछा कि क्या कर रहे हो, तो वह उत्तर देता है, भोजन बना रहा हूँ इत्यादि।

६६० प्र० संग्रह नय किसको कहते हैं ?

उ० अनेकों में सामान्य रूप से पाये जाने वाले सामान्य

धर्म की अपेक्षा से अनेकों को एक रूप में ग्रहण करना संग्रह नय कहलाता है। जैसे—जीव कहने से सब जीवों का ग्रहण होता है।

६६१ प्र० व्यवहार नय किसको कहते है ?

उ० पूर्व नय (संग्रह नय) द्वारा गृहीत विषय को विधि-पूर्वक भिन्न भिन्न रूप से वस्तु का सापेक्ष प्रति-पादन करने वाला नय, व्यवहार नय कहलाता है। जैसे—जीव के सिद्ध और संसारी तथा त्रस और स्थावर आदि भेद करना व्यवहार नय है।

६६२ प्र० पर्यायार्थिक नय के कितने भेद है ? पर्यायार्थिक नय के चार भेद है।

उ० (१) ऋजु सूत्र (२) शब्द (३) समभिरूढ़ और (४) एवभूत।

६६३ प्र० ऋजु सूत्र नय किसको कहते है ?

उ० भूत तथा भविष्य पर्याय को गौण करके वर्तमान पर्याय मात्र को मुख्य रूप से ग्रहण करने वाला नय ऋजु सूत्र नय कहलाता है।

६६४ प्र० शब्द नय किसको कहते है ?

उ० शब्दों के लिग (स्त्रीलिग, पुरुपलिग, नपुंसक लिग) कारक (कर्तादि) वचन (एक वचनादि) काल (वर्त्तमानादि) उपसर्ग (प्र, परा आदि) इत्यादि के कारण शब्दभेद से जो पदार्थ को भी भेद रूप ग्रहण करे, उसे शब्द नय कहते है। जैसे—दार, भार्या, कलत्र ये तीनों भिन्न भिन्न लिग के शब्द एक ही स्त्री-पदार्थ के वाचक है। अतः यह शब्द

नय एक ही पदार्थ को तीन भेद रूप से ग्रहण करता है। इसी प्रकार कारक आदि के दृष्टान्त भी स्व-बुद्धि से समझ लेने चाहिए।

६६५ प्र० समभिरूढ नय किसको कहते है?

उ० लिंगादि का भेद न होने पर भी पर्यायवाची शब्दों के व्युत्पत्ति के भेद से एक ही पदार्थ को भिन्न २ रूप से ग्रहण करना समभिरूढ नय है। जैसे इन्द्र, शक्र पुरन्दर ये तीनों एक ही लिंग के पर्यायवाची शब्द, देवराज इन्द्र के वाचक हैं परन्तु समभिरूढ़ नय इन्द्र को तीन भेद रूप में ग्रहण करता है।

६६६ प्र० एवंभूत नय किसको कहते है?

उ० जिस शब्द का जो क्रिया रूप अर्थ है, उसी क्रिया रूप में परिणमन होने वाले पदार्थ को जो नय पदार्थ रूप से ग्रहण करे, वह एवंभूत नय कहलाता है। जैसे – सिहासन पर सुशोभित होते समय ही "इन्द्र" शब्द का प्रवृत्ति निमित्तक होता है।

६६७ प्र० इन सातों नयों में व्यवहार नय और निश्चय नय का क्या सम्बन्ध है?

उ० यथार्थ होने की अवस्था मे सातों नय निश्चय नय कहलाते है। अर्थात् निश्चय नय के ही ये सात भेद है।

६६८ प्र० कई लोग व्यवहार नय भी बोलते हैं, तो वह किसका नाम है?

उ० निश्चय नय के जो सात भेद बताये है, उन सातों के नामो की नामावली मे व्यवहार नाम का भी एक नय

है, जो कि निश्चय नय का ही एक भेद है। उसको व्यवहार नय कहते हैं।

६६९ प्र० सातों नय में क्या कोई असद् भूत नय भी होती है?

उ० नहीं ! क्योंकि प्रत्येक वस्तु का स्वरूप सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य और विशेष वस्तु स्व-रूप वस्तु से सर्वथा भिन्न नहीं हो सकता। उन दोनों धर्मों का मुख्य और गौण भाव से कथन करने वाले सातों नय है। वस्तु का उभय रूप सद् भूत है। अतः सात नय भी सद्भूत है, असद्भूत नहीं

६७० प्र० कुछ लोगों का कहना है कि जो मिले हुए भिन्न-भिन्न पदार्थों को अभेद रूप में ग्रहण करे, वह असद्-भूत व्यवहार नय है। जैसे - यह शरीर मेरा है अथवा मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहते हैं, क्या यह बात योग्य है ?

उ० इस प्रकार कहना या उदाहरण देना योग्य नहीं हैं क्योकि मिले हुए भिन्न भिन्न पदार्थों में जो अभेद का व्यवहार है, वह मुख्य व गौण भाव की अपेक्षा से है। जैसे शरीर मेरा है, इसमें जो "मेरा" कहा जा रहा है, वह कर्मयुक्त आत्मा है। उसने द्रव्य और भाव कर्म युक्त होकर जो शरीर धारण कर रखा है, उसमें चैतन्य भाव प्रधानता से है। जो मेरा शरीर शब्द का प्रयोग है, वह चैतन्य भाव की सद् भूत सत्ता के कारण है न कि असद्भूत निर्जीव शरीर के कारण से। वैसे ही मिट्टी के घड़े में घी के चिकनास की सत्ता रहने पर घी के घड़े का प्रयोग होता है, न कि कोरे घड़े में।

६७१ प्र० यह विषय निश्चय नय के किस भेद में है ?

उ० यह निश्चय नय के द्रव्यार्थिक भेद के अन्तर्गत नैगम नय का विषय है।

६७२ प्र० घोड़ा, हाथी, मकान आदि के लिए भी "यह मेरा है" इस प्रकार कहा जाता है तो इसको किस नय के अन्तर्गत लेना चाहिये ?

उ० यह विषय भी नैगम नय के अन्तर्गत आ जाता है क्योंकि स्वामित्व भाव ममत्व भाव आदि के आत्मीय परिणाम की मुख्यता से यह मेरा मकान आदि शब्द का प्रयोग होता है।

६७३ प्र० दुर्नय किसको कहते हैं ?

उ० एक नय का ही प्रतिपादन करे, अन्य सब नयों का सर्वथा तिरस्कार करे, वह दुर्नय अथवा मिथ्यानय कहलाता है।

६७४ प्र० मिथ्यानय का क्या फल होता है ?

उ० वस्तु स्वरूप का सही ज्ञान नहीं होता। सही ज्ञान के अभाव में जीव अनन्त संसार में परिभ्रमण करता रहता है। दुःख का अन्त नही होता आदि मिथ्या नय का फल है।

६७५ प्र० सप्तभंगी किसको कहते है ?

उ० अपेक्षा दृष्टि से सात प्रकार के वचन प्रयोग को सप्तभंगी कहते है।

६७६ प्र० सात प्रकार के वचन प्रयोग कैसे होते हैं ?

उ० (१) स्यादस्ति (२) स्याद्नास्ति (३) स्याद् नास्ति (४) स्याद् अवक्तव्य (

अवक्तव्य (६) स्याद्नास्ति अवक्तव्य (७) स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य ।

६७७ प्र० स्याद् अस्ति का प्रयोग कैसे होता है ?

उ० स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल स्वभाव की अपेक्षा जीव द्रव्य है । स्याद् अस्ति का प्रयोग है ।

६७८ प्र० स्याद् नास्ति का प्रयोग कैसे होता है ?

उ० पर द्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा से वह जीव द्रव्य नहीं है । यह स्याद् नास्ति का प्रयोग है ।

६८९ प्र० स्यादस्ति स्याद्नास्ति का प्रयोग कैसे होता है ?

उ० उपरोक्त दोनो वाक्यों का क्रमिक रूप से विना अंतर के बोलना, स्याद् अस्ति नास्ति का प्रयोग कहलाता है । जैसे—स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से जीव द्रव्य है और पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से जीव द्रव्य नही है ।

६८० प्र० स्याद् अवक्तव्य का प्रयोग कैसे होता है ?

उ० जीव द्रव्य को "है या नही" इस रूप में इन दोनों वाक्यों का एक साथ एक शब्द मे जीव द्रव्य को कहा नही जा सकता । इस अपेक्षा से स्याद् अव-क्तव्य का प्रयोग होता है ।

६८१ प्र० स्याद् अस्ति अवक्तव्य का प्रयोग कैसे करते है ?

उ० उसी जीव द्रव्य मे एक ही समय मे एक ही शब्द में "है या नही" इस रूप के कथन नही होने का धर्म भी अपेक्षा से विद्यमान है। इस बात का द्योतन करने के लिए स्याद् अस्ति अवक्तव्य का प्रयोग

होता है।

६८२ प्र० स्याद् नास्ति अवक्तव्य इसका प्रयोग कैसे होता है?

उ० स्याद् अस्ति अवक्तव्य की तरह ही अवक्तव्य नास्तित्व रूप धर्म भी उसी जीव द्रव्य में अपेक्षा से विद्यमान नहीं है, इस बात का द्योतन करने के लिए स्याद् नास्ति अवक्तव्य का प्रयोग होता है।

६८३ प्र० स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य का प्रयोग कैसे होता है

उ० स्याद् अस्ति स्याद्नास्ति अवक्तव्य रूप वाक्यों का निरन्तर क्रमशः कथन करने का धर्म भी उसी जीव द्रव्य में अपेक्षा से विद्यमान है। इस बात का द्योतन करने के लिए स्याद् अस्ति अवक्तव्य और स्याद् नास्ति अवक्तव्य का प्रयोग होता है।

६८४ प्र० निश्चय और व्यवहार क्या हैं ?

उ० दोनों आपेक्षिक शब्द हैं। एक ही वस्तु की दो अवस्थाओं का ज्ञान कराया जाता है। निश्चय नय के दो भेद किये गये हैं। (१) द्रव्यार्थिक (२) पर्यायार्थिक। द्रव्यार्थिक नय के जो तीन भेद किये गये हैं, उनमें तीसरा भेद व्यवहार नय है। यह निश्चय नय का ही एक भेद है। यह नय संग्रह नय से गृहीत विषय को विधिपूर्वक भेद करके वर्णन करता है। यथा संग्रहनय की दृष्टि से जी[illegible] इस एक ही शब्द से सम्पूर्ण जीव जाति का [illegible] होता है और व्यवहार नय की दृष्टि से त्रस स्थावर आदि के [illegible] भेद रूप से [illegible] होता है।

६८५ प्र० जड़ में मनुष्य क[illegible] और मनुष्य

त्रस जीव है। यह निश्चय नय स्वरूप ही व्यवहार नय का कथन है। इतना स्पष्ट होते हुए भी कई लोग कहते है कि निश्चय नय से जीव अरूपी और व्यवहार नय से रूपी है, ऐसा क्यों कहा जाता है, जब कि निश्चय नय से जीव रूपी और अरूपी दोनों है?

उ० नय के स्वरूप को नही समझने वाले अथवा दुर्नय-गामी मिथ्यात्वी अपने हठ के कारण भले ही ऐसा कह दे किन्तु सम्यग् दृष्टि वीतराग मार्ग का सही अनुयायी तो यही कहेगा कि निश्चय नय के एक भेद की दृष्टि से आत्मा रूपी है और उसी निश्चय नय के अन्य भेद की दृष्टि से अरूपी है। इस प्रकार अपेक्षा से रूपी अरूपी दोनों कथन निश्चय नय के ही भेदों के अन्तर्गत आ जाते हैं, बाहर नहीं रहते।

६८६ प्र० रूपी आत्मा कब से चला आ रहा है ?

उ० रूपी आत्मा अनादिकाल से चला आ रहा है।

६८७ प्र० रूपी आत्मा भविष्य में कितने समय तक रहेगा ?

उ० जब तक आत्मा सही ज्ञान और सही श्रद्धा के साथ चारित्र धर्म की परिपूर्ण आराधना से सम्पूर्ण आठों कर्मो को क्षय नही कर लेगा, तब तक सदा रूपी ही बना रहेगा।

६८८ प्र० सम्यग् दृष्टि जीव आत्मा के स्वरूप को किस रूप मे समझता है ?

उ० सम्यग् दृष्टि जीव सातों नयों की सापेक्ष दृष्टि से आत्मा भूत, भविष्यत, वर्तमान आदि पर्यायों को

यथा स्थान यथार्थ रूप में समझता है।

६८९ प्र० भूत पर्याय को किस रूप में समझता है ?

उ० इस आत्मा के सही श्रद्धापूर्वक सही आचरण के नही करने से वर्तमान पर्याय के पूर्व में अनन्तानन्त भूतकालीन पर्याय में अनादि काल से भटकना पडा है । अब मै सावधान हो गया हूँ। अब वैसी स्थिति मेरी नहीं बन पायेगी, ऐसा दृढ विश्वास करता है ।

६९० प्र० वर्तमान पर्याय को किस रूप में समझता है ?

उ० वर्तमान पर्याय में आठ कर्मो के आवरण से युक्त होता हुआ भी मै अपने शुद्ध श्रद्धापूर्वक आचरण से नवीन कर्मो को रोककर पुराने कर्मों को नष्ट करने का शक्तिभर प्रयत्न करूंगा क्योंकि मेरा अंतिम लक्ष्य सिद्ध पर्याय स्वरूप बनने का निश्चित रूप में बन चुका है ।

६९१ प्र० भविष्य पर्याय का चिन्तन किस रूप में करता है ?

उ० भविष्य मे मै इस प्रकार के अन्तिम लक्ष्य से शुद्ध श्रद्धा के साथ चारित्र का पूर्णरूपेण पालन करता हुआ सम्पूर्ण कर्मो को समूल नष्ट कर अपने अंतिम लक्ष्य पर अवश्य पहुंचूंगा, ऐसा मेरा दृढ़ (अटल) निश्चय है ।

६९२ प्र० अन्तिम लक्ष्य के अतिरिक्त क्या बीच का भी लक्ष्य वनाना पड़ता है ?

उ० अवश्य । गुण स्थानों में आरोहण करते हुए अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधना स्वरूप बीच के लक्ष्य भी वनाने पड़ते है, तभी अन्तिम लक्ष्य पर

पहुंचा जा सकता है, अन्यथा नहीं। जैसा कि भगवती सूत्र १।७।६२ में कहा है:—

तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अंतिए एगमपि आरियंधम्मियं सुवयणं सोच्चा, निसम्म तओ भवइ संवेगजायसड्ढे, तिव्वधम्माणुरागरत्ते, से णं जीवे धम्मकामए, पुन्नकामए, सग्गकामए, मोक्खकामए, धम्मकंखिए, पुन्नकंखिए, सग्गकंखिए, मोक्खकंखिए, धम्मपिवासए, पुन्नपिवासए, सग्गमोक्खपिवासए, तच्चित्ते, तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणाभाविए, एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज देवलोगेसु उववज्जइ से तेणट्ठेणं गोयमा !

६९३ प्र० कुछ लोगों का कहना है कि आत्मिकज्ञान मात्र प्राप्त करने से मोक्ष हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ भी करने की आवश्यकता नही है। यह कथन क्या सच है ?

उ० यह कथन सत्य नही है क्योंकि वीतराग प्रभु ने सम्यग्ज्ञान, सम्यग् श्रद्धा और सम्यग् चारित्र इन तीनो के मिलने पर ही मोक्ष मार्ग बताया है, न कि सिर्फ आत्मिकज्ञान मात्र से। ज्ञान मात्र से मोक्ष बताना सिद्धान्त-विरुद्ध है।

६९४ प्र० बीच के लक्ष्य से क्या तात्पर्य है ?

उ० ज्ञान-दर्शन चारित्र की आराधना करने के लिए आर्यक्षेत्र, मनुष्य शरीर, उत्तमकुल, नीरोग शरीर आदि १० बोल की प्राप्ति होना आवश्यक है क्यों कि इनके बिना अंतिम लक्ष्य की सिद्धि न कभी

हुई, न होती है और न होगी। अतः मनुष्य तन आदि भी बीच में लक्ष्य कहे जा सकते है।

६९५ प्र० मनुष्य शरीर आदि १० बोलों की प्राप्ति किस प्रकार होती है ?

उ० मनुष्य तन आदि १० बोल पुण्यफल का कार्य है अतः भव्य जीवों को अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पुण्य का उपार्जन करना भी आवश्यक है।

६९६ प्र० तो क्या सम्यग्दृष्टि आत्मा पुण्य-उपार्जन का भी लक्ष्य बनाती है ?

उ० पुण्य को अंतिम लक्ष्य बनाने की आवश्यकता नहीं है लेकिन अतिम लक्ष्य मोक्ष में सहायक स्वरूप अवान्तर लक्ष्य पुण्य को भी बनाया जाता है।

६९७ प्र० क्या पुण्य एकान्त रूप से हेय नहीं है ?

उ० यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। पुण्य जानने योग्य (ज्ञेय) साधक अवस्था में ग्रहण करने योग्य (उपादेय) और सिद्ध अवस्था में छोड़ने योग्य (हेय) है। अतः पुण्य को एकांत हेय कहना वीतराग देव का मार्ग नही है।

६९८ प्र० पुण्य भी तो पाप की तरह एक तरह का बन्धन ही है। पाप लोहे की बेड़ी है तो पुण्य सोने की बेड़ी ! फिर यह पुण्य हेय क्यों नहीं है ?

उ० पुण्य बन्धक स्वरूप तो है किन्तु उसे पाप की तरह आत्मा के लिए बाधक मानना मिथ्या है। लोहे की बेड़ी और सोने की बेड़ी की जो बात कही गई, यह बात भी पुण्य पाप को बन्धन की समानता

नहीं बताती, बल्कि इसी बात से पुण्य और पाप का अंतर एवं महत्त्व स्पष्ट परिलक्षित होता है। लोहे की बेड़ी इज्जत को मिट्टी में मिलाने वाली है, जब कि सोन का कड़ा इज्जत एवं मनुष्य के महत्त्व को चमकाने वाला है। उसकी उपमा पत्थर की नौका और लक्कड़ की नौका से दी जा सकती है। पत्थर की नौका ज्ञेय और सदाकाल के लिए सर्वथा हेय ही है जबकि लक्कड़ की नौका ज्ञेय और समुद्र के पार पहुंचाने में उपादेय और परले किनारे पहुंच जाने पर हेय है। वैसे ही पाप तो पत्थर की नौका के तुल्य एकात रूप से हेय ही है और पुण्य लक्कड़ की नौका के तुल्य ज्ञेय, उपादेय और अंत में हेय है। ऐसा समझना सम्यक् दृष्टि का कार्य है।

६९९ प्र० इस दृष्टि से तो पुण्य की आकांक्षा सिद्ध होती है किन्तु पुण्य की आकांक्षा सम्यग् दृष्टि कैसे कर सकता है ?

उ० सम्यग् दृष्टि की यह आकांक्षा गलत नहीं है क्यों कि वह अवान्तर लक्ष्य के लिए ही पुण्य की आकांक्षा करता है, न कि अंतिम लक्ष्य-स्वरूप आकांक्षा करता है।

७०० प्र० इस में शास्त्रीय प्रमाण क्या है।

उ० शास्त्रीय प्रमाण भगवती सूत्र का है।

७०१ प्र० वह प्रमाण क्या है ?

उ० भगवती सूत्र शतक १, उद्देश्य ७, सूत्र ६२ में पाठ इस प्रकार है।

"तहा रूवस्स समणस्स–माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म तओ भवइ संवेग जायसड्ढे तिव्व धम्माणुरागरत्ते से णं जीवे धम्मकामए, पुण्णकामए, सग्गकामए, मोक्खकामए, धम्मकखिए, पुण्णकंखिए, सग्गकंखिए, मोक्खकंखिए, धम्मपिपासिए, पुण्य–सग्ग–मोक्खपिपासिए, तच्चिते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तइप्पिय करणे, तब्भावणा भाविए एयसि णं अंतरंसि कालं करे देवलोगे "उव्ववज्जइ से तेण्ट्ठे णं गोयमा"

भगवती सूत्र १, ७, ६२

"हे गौतम ! तथा रूप के श्रमण माहण के पास एक भी आर्य धर्म संबंधी वचन सुनने से जीव को उसके बाद भी भवभय होने से धर्म में श्रद्धा उत्पन्न होती है । यह तीव्र धर्मानुराग से अनुरक्त–सा हो जाता है । वह जीव धर्मकामी, पुण्यकामी, स्वर्ग–कामी, मोक्षकामी, धर्मकांक्षी, पुण्यकांक्षी, स्वर्गकांक्षी, मोक्षकांक्षी, धर्म पिपासु, पुण्य पिपासु, स्वर्ग पिपासु, मोक्ष पिपासु तथा उनमें चित्त, लेश्या, अध्यवसाय और तीव्र अध्यवसाय–प्रयत्न विशेषवाला होता है। वह उक्त धर्मादि अर्थों में उपयोग रखता हुआ तथा उनमें अपनी इन्द्रियों को अर्पण करके, उनकी भावना से भक्ति–वासित होकर, यदि काल में मरता है, तो वह देवलोक में उत्पन्न होता है ।"

सद्धर्ममंडन, पृष्ठ ३७७

इसमें कहा गया है कि तथा रूप के श्रमण

माहण के पास से एक भी आर्य वचन को सुनने से भवभय के कारण धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है अर्थात् सम्यग दृष्टि बनती है और फिर वह संवेग वैराग्य को प्राप्त होता है। धर्म मे तीव्र अनुरक्त बनता हुआ धर्म की, पुण्य की, स्वर्ग की, और मोक्ष की कामना करता है वैसे ही धर्म की, पुण्य की, स्वर्ग की और मोक्ष की आकांक्षा और उसी तरह से इनकी पिपासा भी करता है। उसमें उसी प्रकार से मन, चित्त, लेश्या और अध्यवसायों को बनाता है। इससे भलीभाति सिद्ध है कि सम्यग् दृष्टि जीव पुण्य की आकांक्षा आदि भी करता है।

७०२ प्र० आभ्यंतर लक्ष्य का भावात्मक रूप समझ में आ गया लेकिन कुछ रूपक दे दिए जायं तो स्पष्ट रूप से हृदयंगम हो सकता है।

उ० कल्पना कीजिये कि एक पुरुष को कलकत्ते जाना है। कलकत्ता जाने का अंतिम लक्ष्य उसका बन चुका है। वह कलकत्ते जाने के लिए अवान्तर लक्ष्य भी बनाएगा, तब कलकत्ते पहुंचेगा। कलकत्ते का अंतिम लक्ष्य लेकर के घर से निकलने के पूर्व तांगा व मोटर का अवान्तर लक्ष्य बनाएगा। उनमे बैठकर हवाई जहाज का भी अवान्तर लक्ष्य बनायेगा। हवाई अड्डे पर पहुंचने के पूर्व यह भी सोचेगा कि हवाई जहाज के आने मे विलम्ब हो गया तो कहां ठहरेगा, वहीं पर रहे हुये विश्राम गृह पर वह ध्यान लगाएगा, इसलिए कि हवाई जहाज आने मे विलम्ब हो तो विश्राम गृह मे सोन

समय आनंदपूर्वक व्यतीत किया जा सके। इस प्रकार कलकत्ते जाने वाला तांगे, मोटर और हवाई जहाज आदि को कलकत्ता पहुंचाने में सहायक रूप अवान्तर लक्ष्य के रूप में लेता है क्योंकि उनकी सहायता के बिना कलकत्ता पहुंचा नहीं जा सकता, किन्तु उन्हीं को सब कुछ अंतिम लक्ष्य के रूप में कलकत्ता नहीं मानता। वैसे ही भव्य आत्मा मोक्ष रूपी कलकत्ता अंतिम लक्ष्य बनाकर तांगे, मोटर आदि की तरह पुण्य के फल स्वरूप मनुष्य शरीर आदि की सहायता रूप अवान्तर लक्ष्य को स्वीकार करता है। इसीलिए शास्त्र में धर्म कांक्षा और मोक्ष कांक्षा के साथ साथ पुण्य कांक्षा और स्वर्ग कांक्षा भी बताई गई है।

७०३ प्र० पुण्य कांक्षा तो ठीक है लेकिन स्वर्ग कांक्षा क्यों आवश्यक है ?

उ० स्वर्ग कांक्षा तो उस विश्राम गृह के तुल्य है, जहां पर हवाई जहाज के आने में विलम्ब होने पर शांति से ठहरा जा सके क्योंकि हवाई अड्डे प्रायः शहर से दूर जंगल में हुआ करते हैं। अगर विश्राम गृह की आकांक्षा रूप अवान्तर लक्ष्य नही बनावे तो उस जंगल में कष्ट पाना पड़ता है। सम्भव है कि उसे जंगल में जंगली जानवरों से कष्ट पाना पड़े और उसका अंतिम लक्ष्य रूप कलकत्ता दर-किनार रह जाय। वैसे ही भव्य आत्मा मोक्ष रूप लक्ष्य के लिए भरसक प्रयत्न करने का साहस रखने पर भी यह सोचता है कि कदाचित् इसी जन्म में

मोक्ष न जा सकूं तो वीच का विश्राम गृह करना पड़े तो स्वर्गादिक का हो, जहां शान्तिपूर्वक वीच का समय व्यतीत किया जा सके अन्यथा नरक तिर्यंच रूप अन्य गति में जाना पड़ गया तो कब मोक्ष प्राप्त होगा, इसकी भी मति नहीं रहेगी। इस दृष्टि से विश्राम गृह की तरह स्वर्ग की कांक्षा करता है न कि उसी को अंतिम लक्ष्य रूप मोक्ष मानकर चलता है।

७०४ प्र० विश्राम गृह तो कुछ और ही सुनने को मिले हैं जैसे सम्यग् दृष्टि श्रावक के सामायिक, पौषध, संथारा आदि। अतः इनका क्या तात्पर्य है ?

उ० ये भी विश्राम गृह माने गये है क्योंकि आत्मा जब अनादि कालीन मिथ्यात्व से छूटकर प्रथम उपशम सम्यकत्व प्राप्त करता है, उस वक्त अंतर्मुहूर्त के लिए उस आत्मा को शांत प्रशांत अवस्था का अनुभव होता है। वह अवस्था अनादि कालीन मिथ्यात्व की दशा से संसार में परिभ्रमण करते हुए प्रथम वार उपशम सम्यकत्व की अवस्था है। उसमें हेय, ज्ञेय, उपादेय आदि तत्वों पर भलीभांति विश्वास हो जाने से आत्मा को शान्ति का मार्ग मिलता है। अतः वह मिथ्यात्वी जीव का सम्यक् दृष्टि रूप प्रथम विश्राम स्थान कहलाता है।

७०५ प्र० क्या अनादि कालीन मिथ्यात्वी को औपशमिक सम्यक्त्व ही प्राप्त होती है, क्षायिक या क्षायोपशमिक प्राप्त नहीं होती ?

उ० ऐसी बात नहीं है। कर्मग्रन्थ की दृष्टि से तो प्रथम

उपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त होती है पर सिद्धान्त की दृष्टि से क्षयोपशम या क्षायिक भी प्रथम वार प्राप्त हो सकती है। अतः उनमें भी आत्मा उस प्रथम विश्राम स्थान का अनुभव करता है।

७०६ प्र० व्रतधारी का दूसरा विश्राम स्थान किस अपेक्षा से माना गया है ?

उ० सम्यक्त्व दृष्टि वाला उस औपशमिक सम्यक्त्व स्वरूप विश्राम स्थान में विश्राम करने के पश्चात् उर्ध्वगामी चिंतन के साथ समग्र हेय वस्तु का परित्याग करने की आस्था रचने पर भी कर्म की क्षयोपशमिक तारतम्यता से परिपूर्ण त्याग नहीं कर पाता। अतः वह देशव्रत को ग्रहणकर अव्रत की क्रिया सम्बन्धी कर्म के भार को उतार देता है। अतः जितना भार उतरता है, उतनी ही उसको शांति मिलती है। इस दृष्टि से दूसरा विश्राम स्थान देशव्रतधारी श्रावक का माना गया है।

७०७ प्र० तीसरा विश्राम स्थान कौनसा है ?

उ० श्रावक के लिए तीसरा विश्राम स्थान सामायिक का है। वह उस सामायिक अवस्था में देशव्रत की सीमा में खुले रखे हुये ममत्व का भी कम से कम ४८ मिनिट के लिए तो दो करण तीन योग से त्याग करता है। इससे उस समय में उसे बड़ी शान्ति मिलती है। अतः श्रावक के लिए सामायिक को तीसरा विश्राम स्थान माना गया है।

७०८ प्र० चौथे विश्राम स्थान के विषय में समझाइये ?

उ० श्रावक के लिए चौथा विश्राम स्थान प्रति पूर्ण

औपध है क्योंकि इसमें २४ घण्टों के लिए दो करण तीन योग से त्याग कर अपनी आत्मा को आध्यात्मिक विश्राम देने का प्रसंग आता है। अतः यह चौथा विश्राम स्थान श्रावक के लिए आवश्यक है।

७०९ प्र० पांच प्रहर का ग्यारहवां पौषध एवं दशवां पौषध दया, तिविहार उपवास आदि के साथ क्या विश्राम स्थान नही माने जाते ?

उ० ये भी विश्राम स्थान माने गए हैं लेकिन इनका प्रथम स्थान इसलिए नही गिनाया गया कि ये सामायिक और प्रति पूर्ण औपध के बीच में गर्भित है।

७१० प्र० क्या दया को भी पौषध माना गया है ?

उ० हां, माना गया है। भगवती सूत्र में शंखजी पोखली जी नामक बड़े बड़े श्रावकों का वर्णन आता है। उन्होंने एक समय श्रावकों से परामर्श किया कि कल हम लोग असनं पानं खाइमं साइमं आदि तैयार करके खाते पीते पौषध करेंगे। अतः यह खाता पीता पौषध आज की भाषा में दया ही कहलाता है।

७११ प्र० क्या ग्यारहवां पौषध भी पानी पीकर के किया जा सकता है ?

उ० नहीं। क्योंकि ग्यारहवां पौषध पच्चखाने का जो पाठ है उसमें असनं पानं खाइमं साइमं चार आहार आदि का त्याग है। अतः पानी पी करके ग्यारहवां पौषध का पच्चक्खाण करना उस पाठ से

विरुद्ध है ।

७१२ प्र० पानी तो पहले पीते हैं और ग्यारहवां पौषध पच्च-क्खने के बाद फिर हम पानी नहीं पियेंगे, तब वह इस पाठ से विरुद्ध कैसे होगा ?

उ० यह तो पंचम काल की गिरी हुई मानस–वृत्ति का परिचायक है । इस गली से तो जैसे पानी पीकर ग्यारहवां पौषध का विधान माना जायगा, वैसे चारों आहार करके ग्यारहवां पौषध पच्चक्खने में कोई रूकावट नही होगी। इसी प्रकार अन्य व्रतों में भी गलियां निकाली जा सकती है। अतः इस प्रकार की गलियां निकाल कर व्रतों को विकृत बनाना वास्तविक सम्यग्दृष्टि की आराधना के लिए कतई योग्य नहीं है ।

७१३ प्र० तो फिर नवकारसी के पाठ में "उग्गए सूरे" पाठ से पच्चक्खाण कराया जाता है, इसका क्या तात्पर्य है

उ० इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि कम से कम रात्रि के १२ बजे के बाद कुछ भी नहीं लिया हो वही सूर्यो-दय से लेकर ४८ मिनिट तक चौविहार रखे तो शास्त्रीय दृष्टि की नवकारसी कहलाती है। यों तो जैनियों को रात्रि का चौविहार रखना चाहिए। कदाचित् परिस्थितिवश कोई कमजोरी हो और वह नवकारसी करना चाहता है तो उसके लिए यह संकेत दिया गया है।

७१४ प्र० पच्चक्खाण का पाठ तो "उग्गए सूरे" है फिर १२ वजे के वाद का अर्थ कैसे ग्रहण किया गया है ?

उ० शास्त्र में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उन शब्दों का यथास्थान यथायोग्य अर्थ ग्रहण करना चाहिए सिर्फ शब्द के उच्चारण मात्र को ही पकड़ करके चलना उपयुक्त नहीं है। यदि शब्द के उच्चारण मात्र को पकड़ करके ही अर्थ लिया जाने लगा तो शास्त्रकारों का अभिप्राय नहीं समझ पायेंगे क्योंकि शास्त्रकारों का अभिप्राय शास्त्रीय अर्थ को निकालने के विषय में व्युत्पत्ति रूढ़ि लक्षण, नय, प्रमाण आदि से रहा हुआ है। इन अभिप्रायों को दृष्टि में रखते हुये यथायोग्य यथास्थान शास्त्र के भावों को ग्रहण करना चाहिए।

७१५ प्र० इस प्रकार भावों को ग्रहण नहीं करके केवल शब्द उच्चारण से ही अर्थ ग्रहण किया जाय तो क्या हानि है?

उ० हानि यह होगी कि शास्त्र के सही भावों को नही समझ पायेंगे और कभी कभी उलटा ही मार्ग ग्रहण करने का प्रसंग आ जायेगा। जैसे शास्त्र में नव प्रकार का पुण्य बताया गया है—अन्न पुण्णे पान पुण्णे आदि। इसमें शब्दों का भावार्थ तो केवल अन्न पान आदि का ही है, न तो देने का ही पाठ है और न शुभ भावों का। अतः शुभ भावों से अन्न देने का अर्थ कहां से निकालेंगे? इसी प्रकार कई स्थलों पर केवल शब्द मात्र से शास्त्र के भावों में विपरीतता का प्रसंग प्राप्त होगा। अतः अन्न पुण्णे शब्द का तात्पर्य शुभ भावपूर्वक अन्न देने का लिया जाता है, वैसे ही "उग्गए सूरे" शब्द का

तात्पर्य कम से कम रात्रि के १२ बजे से ग्रहण करना चाहिए ।

७१६ प्र० ये विश्राम स्थान तो हर किसी को भी जल्दी समझ में आ सकते है लेकिन पुण्य और स्वर्ग सम्बन्धी विश्राम इन विश्राम स्थानों के साथ कैसे सम्बन्धित हो सकते है ?

उ० ये चारों विश्राम स्थान गृहस्थ के लिए बताए गये है । गृहस्थ अपनी घरेलू समस्याओं में उलझा हुआ रहता है। उन उलझनों के बीच भी वह कुछ आध्यात्मिक साधना कर सके, इस दृष्टि से इन विश्राम स्थानों का गृहस्थ के लिए विशेष महत्व है। गृहस्थ जीवन की सभी तरह से समुन्नत अवस्था अंतराय कर्म के क्षयोपशम व पुण्य के फलस्वरूप मिलती है। अतः पुण्य का इसके साथ घनिष्ट संबंध रहा हुआ है एवं श्रावक व्रत की आराधना मात्र से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। उसके लिए अवान्तर लक्ष्य के रूप में स्वर्ग की स्थिति का सीधा सम्बन्ध जुड़ता है। इस प्रकार उपर्युक्त चारों विश्राम स्थान के साथ पुण्य और स्वर्ग का विषय अधिक सम्बन्धित है ।